

सामाजिक-साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विचारों का मासिक

संरक्षक

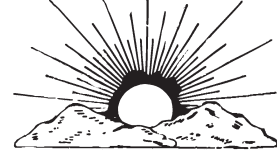
श्री ओम प्रकाश परीडा, दिल्ली
श्री नरेश ग्रोवर, जबलपुर
श्री एम. एल. वर्मा, इलाहाबाद
श्री राधेलाल रावत, विधायक, लखनऊ
श्री गुरुशरण सिंह, नागपुर
श्रीमती पूजाश्री, मुंबई
श्री के. राज आर्य, नई दिल्ली
श्री अंशलाल पन्ने, जबलपुर
श्री बलराज कुमार, नई दिल्ली
श्री यशोदा नंदन त्रिवेदी, दिल्ली
श्री राजेन्द्र पटेरिया, जबलपुर
श्री मधुर गंजमुरादाबादी, उन्नाव
श्री राकेश सिंह, मुंबई
श्री हरजीत सिंह, नई दिल्ली
श्री राजेन्द्र पी. शुक्ल, मुंबई

आजीवन सदस्य

डॉ. कुंवर प्रेमिल, जबलपुर
श्री देवेन्द्र कुमार मिश्रा, छिंदवाड़ा
श्री फणी भूषण कर्ण, पटना
श्री बी. बी. चांदना, जबलपुर
डॉ. (सुश्री) गीता गीत, जबलपुर
श्री अवध बिहारी नायक, जबलपुर
श्री जे. पी. सिंह, जबलपुर
श्री रवीन्द्र झा, दिल्ली
श्री राजनारायण पासी, हैदराबाद
श्री सुरेन्द्र साहू, सरगुजा
श्रीमती सुषमा श्रीवास्तव, लखनऊ
श्री अमरेन्द्र नारायण, जबलपुर
श्री शरदचन्द्र राय श्रीवास्तव, जबलपुर
श्री यूनस अदीब, जबलपुर
श्री राजेश माहेश्वरी, जबलपुर

सहयोग राशि (1 प्रति)	:	₹ 20
वार्षिक	:	₹ 220
द्वैवार्षिक	:	₹ 420
त्रैवार्षिक	:	₹ 600
आजीवन	:	₹ 2500
संरक्षक सदस्य	:	₹ 5000

प्राची



वर्ष : 6 अंक : 1, पूर्णांक : 61

जून : 2015

सहायक संपादिका

डॉ. भावना शुक्ल

प्रकाशक

श्रीमती किरन वर्मा

संपादन-संचालन

पूर्णतया अवैतनिक, अव्यावसायिक

संपादक

राकेश भ्रमर

मो. 09968020930

Email: rakeshbhramar@rediffmail.com

संपादकीय पता

मुख्य कार्यालय

प्राची मासिक

7, श्री होम्स, कंचन विहार,
बचपन स्कूल के पास,
लामटी, विजय नगर
जबलपुर-482002 (म.प्र.)
मोबाइल: 09425323193

प्रज्ञा प्रकाशन

24, जगदीशपुरम
लखनऊ मार्ग,
निकट त्रिपुला चौराहा,
रायबरेली-229001 (उ.प्र.)
मो. 09889603632

Email:- prakashanpragya@gmail.com

prachimasik@gmail.com



जून 2015

प्राची

1

विषय क्रम

विविधा, लेख व अन्य

3. आपने कहा है: पाठकों के पत्र
6. संपादकीय: राकेश भ्रमर
9. स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास: मधुरेश
64. संकट में देश का भविष्य: रीमा तिवारी
66. शिक्षा से महिला सशक्तिकरण: डॉ. प्रभुलाल चौधरी
71. समीक्षा: रुखसाना सिद्दिकी, निर्मला सुरेन्द्रन, प्रो. शरद नारायण खरे, आचार्य भगवत दुबे
74. साहित्य समाचार

कहानियां-उपन्यास एवं व्यंग्य

19. पहचान: नीलकांत
24. बाहर आने का रास्ता: जाय विलियम्स
31. लाजवन्ती: राजेन्द्र सिंह बेदी
38. हितैषी: आशापूर्णा देवी
43. गाओ बिटिया गाओ: उज्ज्वला केलकर
48. अंधी लालटेन: अमृत राय
55. रोवन शास्त्र: मंगल कुलीजन्द
57. चेहरा उतर गया: रमेश मनोहरा

काव्य जगत

30. गजल: मोह. मुइनुद्दीन 'अतहर'
54. कुण्डलिया: राकेश भ्रमर
58. दो गजलें: शकेब जलाली
59. कविता और गजल: केशरी प्रसाद पाण्डेय 'वृहद' सनातन कुमार वाजपेयी 'सनातन'
60. कविताएं: राजा चौरसिया
61. कविताएं: केदारनाथ 'सविता', रंजीत रविशैलम्
62. कविताएं: सरिता, रुचि
63. दो कविताएं: डॉ. भावना शुक्ल
65. कविता: आशा गुसाई
73. इतिहास के पन्नों पर: राजीव कुमार 'त्रिगर्ती'

लघु रचनाएं

23. नेताजी की चतुराई: आनन्द कुमार तिवारी
30. कैसी जागृति: रविन्द्र सिंह
37. बेटे की नहीं बहू की मां: सरोज गुप्ता
54. कुक्कू: डॉ. गीता गीत
56. बंटवारा: राजेश माहेश्वरी

प्राची



वर्ष : 6 अंक : 1, पूर्णांक : 61
जून : 2015

- ✽ प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता की पूर्ण जिम्मेदारी लेखक की होगी.
- ✽ लेखक के विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है.
- ✽ किसी भी प्रकार के विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र जबलपुर होगा.
- ✽ प्रकाशित सामग्री पर पाठकों की प्रतिक्रिया 'आपने कहा है...' पृष्ठ पर प्रकाशित की जायगी.
- ✽ आपके विचारों का स्वागत है.



स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक श्रीमती किरन वर्मा एवं श्री अमरेन्द्र सिंह, मुद्रक द्वारा प्रज्ञा प्रकाशन के लिये ग्रेनेडियर्स प्रिंटिंग प्रेस, कैन्ट, जबलपुर (म.प्र.) से मुद्रित तथा 7, श्री होम्स, कंचन विहार, बचपन स्कूल के पास, लामटी, विजय नगर, जबलपुर-482002 (म.प्र.) से प्रकाशित

कलम चलाते रहें

प्राची का मई अंक मिला. हमेशा की तरह प्राची हिन्दी साहित्य की हर विधा की उत्कृष्ट रचनाओं से सजी-धजी है. शुरुआत संपादकीय से होती है. इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि संपादकीय प्राची की जान होती है. इसके बाद दूसरी रचनाएं फीकी तो नहीं, परन्तु गौण लगती हैं. मुझे तो लगता है कि जो लोग प्राची को पसंद करते होंगे, उनमें से इसका संपादकीय प्रथम कारण होता होगा. 'मुसीबत अकेले नहीं आती' के माध्यम से संपादक महोदय ने मुसीबतजदां लोगों की खैर-खबर ली है, यह अच्छी बात है. हिन्दी के लेखक अपनी कहानियों में मजदूरों और गरीबों की बात करते हैं, परन्तु उनके मुद्दे कभी नहीं उठाते. संपादक ऐसे ही मुद्दों पर अपनी कलम चलाकर समाज को जागरूक करते रहें, इसी शुभकामना के साथ!

यशपाल के उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' पर राज नारायण का लेख पुराना होते हुए भी जानकारी से भरा है. भाषा जानदार है. महादेवी वर्मा पर सीताराम पाण्डेय का लेख घिसा-पिटा है. इसमें कुछ भी नया नहीं है. ऐसे लेख हमने कोर्स की किताबों में बहुत पढ़े हैं. 'मुस्कान' कहानी कारखानों में काम कर रहे मजदूरों की व्यथा-कथा कहती है. अन्य कहानियां भी प्रभावशाली और रुचिकर हैं. अमृता प्रीतम की कहानी 'आम का बौर' एक भावुक प्रेम कहानी है. शेष रचनाएं भी पठनीय हैं. प्राची की प्रगति के लिए मेरी शुभकामनाएं!

सिराज अहमद, लखनऊ (उ.प्र.)

मनुष्य कब्रें खोद रहा है

प्राची का अप्रैल अंक अभी-अभी प्राप्त हुआ है. 'वसन्त नहीं आया' संपादकीय के माध्यम से आपने बदलते मौसम के मिजाज को बहुत अच्छी तरह बयान किया है. आज प्रकृति के साथ-साथ हर चीज बदलती जा रही है. कोई भी चीज अपनी नियत स्थिति में नहीं है और कोई भी काम अपने समय पर नहीं हो रहा है. न वर्षा ऋतु में बरसात होती है, न सर्दी में जाड़ा पड़ता है और न गर्मी में झुलसाने वाली गर्मी. इस बार तो मौसम ने लोगों को बहुत आंखें दिखाई हैं. कब बारिश हो जाएगी, कब आंधी-तूफान आ जाएगा और कब अचानक भीषण गर्मी का प्रकोप छा जाएगा, मौसम विज्ञानी भी बताने में असमर्थ हैं. आपके अनुसार यह सब मनुष्य के कर्मों के कारण हो रहा है. मनुष्य ने जितना ज्यादा

प्रकृति के साथ खिलवाड़ किया है और उसकी हर जीव को विनाश की कगार पर खड़ा कर दिया है, उससे हम अपने विकास की आशा नहीं कर सकते हैं. प्रकृति का संतुलन बिगड़ने से उसके तापमान और वायुमण्डल में भी परिवर्तन होता है. इससे प्राकृतिक आपदाएं, यथा सूखा और बाढ़ और भूकम्प आदि आते हैं. पता नहीं मनुष्य कब सुधरेगा? वह रात-दिन अपनी ही कब्रें खोदने में जुटा हुआ है और उसकी समझ में नहीं आ रहा है कि वह क्या कर रहा है.

प्राची में साहित्य के विविध रंग हमें कविता, कहानी, गीत और गजलों के माध्यम से प्राप्त होते हैं. इस अंक की सभी रचनाएं स्तरीय, पठनीय और प्रेरक हैं. भविष्य में आप ऐसी ही रचनाओं से प्राची को सजाते रहें. शुभकामनाएं!

सुषमा तिवारी, पन्ना (म.प्र.)

पत्रिका में गुटबाजी नहीं है

प्राची का मई 2015 अंक मिला. आभार! रचनाएं पढ़कर मन प्रसन्न हो गया. इतनी अच्छी कहानियों, कविताओं, एवं लघुकथाओं से सजी-धजी मासिक पत्रिका निकालना एक बहुत बड़े साहस का कार्य है. पत्रिका में नए-पुराने सभी लेखकों का समावेश है, इससे प्रतीत होता है कि पत्रिका में रचनाओं के चयन में कोई गुटबाजी नहीं होती है. रचनाएं प्रेरक और पठनीय हैं.

आपसे अनुरोध है कि पत्रिका को निष्पक्ष बनाए रखें. आज हिन्दी साहित्य में गुटबाजी और वाद को लेकर कई मंच बने हुए हैं और लेखक उनसे जुड़कर अपनी लेखनी की धार को कुंद करते रहते हैं. यह लोग निरर्थक विमर्शों को जन्म देकर केवल शोशेबाजी करते हैं. इससे हिन्दी साहित्य का कोई भला नहीं होता. आपकी पत्रिका का स्तर बहुत उच्च है और यह किसी भी बड़ी साहित्यिक पत्रिका के समकक्ष रखी जा सकती है. मेरी शुभकामनाएं!

विनोद पाण्डेय, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)

मर्म को बेधते संपादकीय

प्राची का मई 2015 अंक प्राप्त हुआ. हार्दिक धन्यवाद! पत्रिका में संपादकीय सबसे पहले पढ़ा जाता है. वहीं मैं भी करता हूं. इस बार की संपादकीय ही नहीं, हर अंक की संपादकीय पढ़कर अगर हृदय में गुदगुदी होती है तो उसकी पीड़ा अंदर तक बेध जाती है. आपके सभी संपादकीय मर्म बेधी होते हैं, जो एक तीर की तरह चुभते हैं. जिस तरह सामाजिक सरोकारों से

संबंधित और समाज को जागरूक करने वाले संपादकीय आप लिखते हैं, वह अन्य पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते. आपका प्रयास सराहनीय है. व्यंग्यात्मक शैली में आप कटु बातों को बहुत सहजता से कह जाते हैं, और वह मर्म को बेधते हुए भी किसी को चोट नहीं पहुंचाते. आज मीडिया इतना सशक्त है, परन्तु कहीं भी सच्चाई को सही तरीके से पेश नहीं किया जाता. इस पर कोई विमर्श नहीं होता. चारों तरफ झूठ का बोलबाला है और लोग एक दूसरे को खुश करने के लिए झूठ की फटी ढोल पीटते नजर आते हैं. नेता इसमें सबसे आगे हैं, जो धर्मनिरपेक्षता की डफली बजाते हुए सांप्रदायिकता का नंगा नाच नाचते हैं.

आज के जमाने में प्राची कम से कम सच का झंडा गर्व से लहरा रही है. आपके लेखकीय साहस के लिए वंदना और प्राची की प्रगति के लिए शुभकामनाएं!

सुरेश चन्द, ग्वालियर (म.प्र.)

भारतीय भाषाओं की कहानियां अच्छी हैं

मैं प्राची का बहुत पुराना पाठक हूं. इसमें प्रकाशित देश-विदेश की हर कहानी को मैं बड़े ध्यान से पढ़ता हूं. प्रति माह एक साथ इतनी सारी कहानियां शायद ही कहीं 20 रुपये में उपलब्ध हों. आजकल पाकेट बुक्स भी 100 रुपये से कम में नहीं आती हैं, वह भी घटिया कागज और घटिया छपाई में. विदेशी पुस्तकों के संस्करण मोटे होने के साथ-साथ महंगे भी होते हैं, अतः उन्हें खरीदकर पढ़ना सभी के लिए संभव नहीं है. ऐसे में प्राची हमारे लिए पाठकीय संतुष्टि लेकर आती है और एक महीने की खुराक कम दामों में देकर जाती है. सही मायनों में प्राची साहित्य की सेवा कर रही है.

इधर भारतीय भाषाओं की विभिन्न कहानियां पढ़ने को मिलीं, जिनमें असमिया, उड़िया, बंगाली, तेलुगु, कन्नड, तमिल और मलयालम कहानियां शामिल हैं. उर्दू की कहानियां आप देते ही रहते हैं. प्राची में प्रकाशित भारतीय कहानियों के माध्यम से हमें उस प्रदेश विशेष की संस्कृति का ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे हम सर्वथा अनभिज्ञ रहते हैं. भारत भिन्न-भिन्न भाषाओं और संस्कृति का देश है, अतः एक दूसरे के बारे में जानने का सबसे अच्छा माध्यम साहित्य ही हो सकता है. आशा है, आप हमें भविष्य में हिन्दी की आंचलिक कहानियों से भी रूबरू करवायेंगे. जहां तक मुझे ज्ञात है, खासी, मणिपुरी, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी, हरियाणवी और भोजपुरी में भी अच्छा साहित्य लिखा गया है. इन आंचलिक भाषाओं की कहानियों को प्राची में देंगे, तो हमें अच्छा लगेगा.

शुभकामनाओं के साथ!

रवीन्द्र सचान, फतेहपुर (उ.प्र.)

सामाजिक मुद्दों से जुड़े संपादकीय

प्राची नियमित रूप से मिल रही है. अभी-अभी मई अंक प्राप्त हुआ. अप्रैल अंक अभी पूरा समाप्त भी नहीं हुआ था. पत्रिका का नियमित रूप से समय पर निकलना कठिन ही नहीं श्रमसाध्य भी है. त्रैमासिक लघु पत्रिकायें भी समय पर नहीं निकल पातीं और उसके संपादकों-प्रकाशकों को छः महीने में संयुक्तांक निकालने पड़ते हैं. आप स्तरीय रचनाओं के साथ हर माह समय पर उपस्थित रहते हैं, यह सचमुच आश्चर्य की बात है.

अप्रैल और मई अंक के संपादकीय विशेषकर पसंद आए. यूं तो हर अंक में आपका संपादकीय जानदार और धारदार होता है. जिस प्रकार व्यंग्यात्मक शैली में आप सामाजिक मुद्दों को पाठकों के समक्ष पेश करते हैं, वह सराहनीय है. 'वसन्त नहीं आया' और 'मुसीबत अकेले नहीं आती' दोनों ही सामाजिक मुद्दों से जुड़े हुए संपादकीय हैं. आप केवल व्यंग्य ही नहीं कसते, बल्कि अंत में एक सुझाव और समाधान भी देते हैं. इससे समाज को निश्चित तौर पर एक सार्थक संदेश जाता है.

मलयालम कहानी 'तहसीलदार के पिता' में लेखक ने जिस प्रकार एक पिता के दर्द को उकेरा है, वह लाजवाब है. एक बेटा अपने दर्द को पिता की मृत्यु के बाद ही महसूस कर पाता है. यह सच है कि आधुनिक पीढ़ी अपने लक्ष्य प्राप्त करने के बाद पिता के परिश्रम और दुर्दिनों को भूल जाती है. पिता अपने बेटों को जीवन की उच्च सीढ़ी पर चढ़ाने और स्थापित करने के लिए अपने जीवन की हर खुशी को त्याग कर देता है, परन्तु बेटे जीवन में सबकुछ हासिल कर लेने के बाद भी अपने बुजुर्ग बाप को एक पल की खुशी भी नहीं दे पाते. यह हमारे समाज की एक ऐसी दुःखभरी कहानी है, जिसे केवल एक लेखक ही बयान कर सकता है, कोई बेटा महसूस नहीं कर सकता.

पत्रिका की निरंतर उन्नति के लिए शुभकामनाएं!

मृत्युंजय मिश्र, पटना (बिहार)

भारतीय भाषाओं की कहानियां अच्छी हैं

मैं प्राची का नियमित पाठक हूं. प्रत्येक अंक मैं बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ता हूं, इसकी प्रत्येक रचना को पढ़कर मनन करता हूं. मैं सबसे पहले 'आपने कहा है' स्तम्भ में प्रकाशित पाठकों के पत्र पढ़ता हूं, इसके बाद संपादकीय. पाठकों के पत्रों के माध्यम

से किसी पत्र या पत्रिका के वास्तविक स्वरूप, उसकी नीति और प्रकाशित रचनाओं की गुणवत्ता का पता चलता है. परन्तु मैंने ऐसा देखा है कि ज्यादातर पत्रों में संपादक की प्रशंसा ही होती है. वह किसी रचना विशेष या साहित्य के बारे में बात नहीं करते, बस संपादक के रचना चयन, उसके संपादन कौशल और पत्रिका की प्रस्तुति का गुणगान करके साहित्य के प्रति अपनी जिम्मेदारी की इतिश्री समझ लेते हैं. मेरा आपसे निवेदन है कि ऐसे प्रशंसात्मक पत्रों को 'आपने कहा है' स्तम्भ में प्रकाशित न किया करें. ऐसे पत्रों से न तो पाठकों का कोई भला होता है, न पत्रिका के स्तर में कोई सुधार होता है. संपादक के प्रति इसमें कोई दिशा-निर्देश भी नहीं होता. जिन पत्रों में पत्रिका की किसी सामग्री या समाज के किसी मुद्दे पर बात न हो, उनको पत्रिका में प्रकाशित करना निरर्थक है. यह मेरा विनम्र निवेदन है, बाकी आपके विवेक के ऊपर है.

मेरा मानना है कि प्राची एक संपूर्ण साहित्यिक पत्रिका है. इसमें साहित्य की प्रत्येक विधा को स्थान दिया जाता है. मैंने देखा है कि कुछ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में बेकार-सी कहानियां या भोंडी कविताएं प्रकाशित कर संपादक अपने को साहित्य का पुरोधा या मठाधीश समझने लगते हैं. ऐसी कहानियां और कविताएं सिर के ऊपर से निकल जाती हैं. आजकल कवि जिस तरह की गजलें और छंदहीन कविताएं लिख रहे हैं, उनमें भावों और गुणवत्ता का पूरी तरह से अभाव होता है. छंदबद्ध कविताएं किसी भी पत्रिका में नहीं दिखाई देतीं, जबकि प्राची में दोहे, मुक्तक और गीत समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं. यह हिन्दी साहित्य के लिए एक शुभ संकेत है कि हिन्दी काव्य की विधायें अभी मरी नहीं हैं. उसे प्राची ने जीवित रखा है.

कृपया प्राची के माध्यम से हिन्दी की पुरातन और अधुनातन विधाओं को जीवित रखने के अपने प्रयास जारी रखें. मेरी शुभकामनाएं!

राम चरण वर्मा, बस्ती (उ.प्र.)

प्रकाश फैला रहे हैं

प्राची का नूतन अंक प्राप्त हुआ. रचनाओं का चयन और प्रस्तुति पठनीय, प्रेरक और संग्रहणीय है. आज के जमाने में साहित्यिक पत्रिका निकालना पथर तोड़कर नहर निकालने के समान है, परन्तु आप इस भगीरथ प्रयास में लगे हुए हैं. आपके श्रम को नमन्! आज भारतीय समाज अंधकार की गलियों में भटक

रहा है, उसे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा है. आप साहित्य की मशाल लेकर इन गलियों में प्रकाश फैला रहे हैं. बेहतरीन समाज के निर्माण में आप सफल हों, ऐसी मेरी कामना है. प्राची परिवार के सभी सदस्यों को मेरी ओर से शुभकामनाएं!

नवीन पंडित, सिलीगुड़ी (प. बं.)

प्राची अपने प्रयास में सफल है

मैं प्राची का नियमित पाठक हूँ. पत्रिका की प्रत्येक रचना अपने आप में कोई न कोई नया संदेश लेकर पाठकों के बीच में प्रति माह आती है और उनके मन में एक ज्योति जगाकर फिर अगले माह तक प्रतीक्षा करने के लिए विवश करती है. यह पत्रिका से जुड़े हुए लोगों के श्रम की सफलता है. प्राची की रचनाएं अपने आप में न केवल समूचे भारत को, बल्कि समस्त विश्व को समेटने का प्रयास करती हैं. प्राची अपने प्रयास में सफल प्रतीत होती दिखाई दे रही है.

एक ही पत्रिका में विविध प्रकार की रचनाएं, विविध रंग लेकर, विविध संस्कृतियों के बीच में पाठक को लेकर जाती है. रचनाएं पढ़कर मन आनंदित ही नहीं, विभोर हो जाता है. आशा है, आप अपने अभियान में सफल होंगे और समाज को एक सही दिशा देने के लिए सतत प्रयास रत रहेंगे.

राम कुमार मौर्य, सुल्तानपुर (उ.प्र.)

□□

सूचना

इस स्तम्भ के अंतर्गत पाठकों और लेखकों से प्राची में प्रकाशित होनेवाली रचनाओं पर विचार आमंत्रित है. इसके अतिरिक्त अन्य साहित्यिक-सामाजिक-सामयिक मुद्दों पर भी पाठक/लेखक अपने निष्पक्ष विचार प्रेषित कर सकते हैं. उन्हें प्रमुखता से पत्रिका में स्थान दिया जाएगा. पत्र भेजते समय कृपया ध्यान दें कि वह छोटे हों और सारगर्भित हों. पत्रों में केवल संपादक की प्रशंसा नहीं होनी चाहिए.

शीघ्र ही हम प्रत्येक माह प्रकाशित होनेवाले श्रेष्ठ पत्रों पर पुरस्कार देने की घोषणा करने वाले हैं.

-संपादक

चलो आत्महत्या करें



चलो, आत्महत्या करें! आप चौक गए न! ये कैसी सलाह दे रहा हूं. लोगों को आत्महत्या करने के लिए उकसा रहा हूं. परन्तु नहीं, मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं है. मैं भले-चंगे लोगों को यह सलाह नहीं देना चाहता हूं. मेरी सलाह उन लोगों के लिए है, जो छोटे-मोटे घरेलू मुद्दों और खेती में होनेवाले नुकसान के कारण आत्महत्या कर लेते हैं. निराशा में आकर चुपचाप घर में जहर खा लेते हैं या खेतों-बागों में जाकर पेड़ से लटक जाते हैं.

मुझे तरस आता है, ऐसे लोगों की बुद्धि पर. पता नहीं, ऐसी आत्म-हत्या से उन्हें क्या लाभ मिलता है. लाश उठाने वाला भी कोई नहीं मिलता और रोते हुए परिवार के आंसू पोंछने के लिए गांववाले तो दूर रिश्तेदार भी नहीं आते. सरकार भी ऐसे लोगों को नहीं पूछती. जब सरकार मौसमी आपदा और विपदा से उनकी नष्ट हो गई फसल का मुआवजा नहीं देती, तो उनकी आत्महत्या पर उन्हें क्या देगी? सत्ताधारी नेता मुंहजबानी कुछ घोषणाएं कर देते हैं और विपक्षी नेता उनके नाम पर बस नारेबाजी कर के चुप हो जाते हैं और पद-यात्रा करते हुए अगले चुनाव में सत्ता के गलियारे तक पहुंच जाते हैं.

किसानों और मजदूरों को मैं एक उचित सलाह दे रहा हूं, अगर ठीक लगे तो अमल करो, वरना ठीकरे से माथा फोड़ते रहो. जब कभी आत्महत्या का विचार मन में आए, तो पूरी प्लानिंग के साथ उस पर अमल करो. जब किसानों पर कोई प्राकृतिक आपदा आती है तो सत्ता से दूर राजनीतिक पार्टियों के नेता किसानों और मजदूरों के नाम पर घड़ियाली आंसू बहाने लगते हैं. उस समय इन दलों की राजनीतिक गतिविधियों को पंख लग जाते हैं, वे रैलियां निकालते हैं, सभाएं आयोजित करते हैं. रैलियों और सभाओं में लाखों रुपये बर्बाद कर देते हैं, परन्तु किसी पीड़ित किसान या मजदूर को एक पैसे का मुआवजा नहीं देते, बस पानी पी-कर सरकार को कोसते रहते हैं.

तो फिर पीड़ित किसान या मजदूर करे तो क्या करे? भगवान उसको हर साल बाढ़ और सूखे से मारता रहता है और सरकार अपनी झूठी घोषणाओं से उसके जले में नमक छिड़कती रहती है. तब फिर उसे ही अपने लिए कुछ न कुछ करना होगा.

जब उसे मरना ही है तो वह शहर में आकर मरे. किसी पार्टी के दफ्तर के सामने मरे, किसी राजनीतिक दल की सभा के बीच में शोर मचाता हुआ मरे.

इसके लिए उसे बस लखनऊ या दिल्ली तक आने के लिये बस या ट्रेन के किराये का जुगाड़ करना होगा. घर में पैसे न हों, तो पड़ोसी से उधार ले सकता है. उधार न मिले तो ब्याज पर कर्जा ले ले या घर की कोई चीज गिरवी रख दे. इस बात की कतई चिन्ता न करे कि वह तो आत्महत्या करने जा रहा है, उसका कर्जा कौन वापस करेगा? अरे भई, अभी से बौखलाए जा रहे हो. कथा अभी समाप्त कहां हुई है? अभी तो बालकाण्ड चल रहा है, सुन्दर काण्ड तो लंकाकाण्ड के बाद ही आता है.

लखनऊ में विधान सभा मार्ग और दिल्ली में जंतर-मंतर आत्महत्या के लिए बहुत मुफ्रीद जगहें मानी जाती हैं. सत्ता से च्युत नेता यहीं पर अपनी रैलियां और सभाएं करते हैं. इस बार तो दिल्ली की सत्ताशील पार्टी ने ही जंतर-मंतर में किसानों के पक्ष में एक सभा कर डाली, क्योंकि दिल्ली की सरकार केन्द्र की सरकार को घेरे में लेना चाहती थी. इसके लिए उसने एक हंसते-खेलते किसान के गले में फांसी का घेरा (फंदा) डाल दिया.

खैर, किसान जब सभा स्थल में पहुंच जाए, तो राजनीतिक दल के कार्यकर्ताओं से मिल-जुल कर थोड़ी जान-पहचान बना ले. सभा के कामों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले और सबलोगों को बार-बार बताता रहे कि वह कोई करिश्मा करनेवाला है, ऐसा करिश्मा जिससे नेता, सरकार और मीडिया ही नहीं, पूरी दुनिया चौंक जाएगी.

किसान के लिए आत्महत्या करने का सबसे अच्छा मौका तब होता है, जब राजनीतिक दल के सभी बड़े नेता मंच पर उपस्थित हों. पीड़ित किसान चीखता-चिल्लाता किसी पेड़ पर चढ़ जाए, ऐसे पेड़ पर जिस पर मीडिया के कैमरे का एंगल चारों तरफ से फिट बैठ रहा हो. नेता उसे देख रहे हों, परन्तु पुलिस से इतनी दूर रहे कि वह उसे बचा न पाए. दस-पांच मिनट तक चीखने-चिल्लाने के बाद किसान धमकी देता हुआ गले में गमछे का फंदा डालकर आत्महत्या कर ले. कुछ लोग बचाने के लिए दौड़ेंगे, परन्तु तब-तक

किसान का राम-राम सत्य हो जाता है. अस्पताल लेकर भागने की क्रिया बेकार हो जाती है. एक बार किसान की आत्महत्या से मौत हो जाए, फिर देखिए, सरकार और विपक्ष के नेता किस प्रकार उसके घर पहुंचने लगते हैं, जैसे उनके किसी सगे रिश्तेदार की मौत हो गई हो.

जो किसान जिन्दगी पर मौसम की मार से पतझड़ के सूखे पत्ते की तरह मुरझाया रहता है, जिसके घर में महाजन की कृपा से खलिहान से अन्न का दाना तक नहीं बचता, उसी किसान की मौत पर लाखों लोग उसके परिजनों को सांत्वना देने आते हैं. प्रदेश सरकार और केन्द्र सरकार में होड़ लग जाती है कि कौन उसे सबसे ज्यादा मुआवजा दे सकती है. विपक्षी दल भी अपनी आंखों में नल का ताजा पानी भरकर आंसू बहाने पहुंच जाते हैं. वह भी दो-चार लाख का मुआवजा मृत किसान के परिवारवालों को दे देते हैं. इस प्रकार जो किसान जीवन भर एक बीड़ी बण्डल के पैसे के लिए भीख मांगता नजर आता है, उसका परिवार उसकी आत्महत्या के बाद लखपति हो जाता है. जितना उसका परिवार सात जन्मों तक नहीं कमा सकता था, वह एक दिन में कमा लेता है. यही नहीं, उसके परिवार के एक वयस्क व्यक्ति को सरकारी नौकरी भी मिल जाती है. बताइए, ऐसा करिश्मा क्या किसी किसान और मजदूर के जीते-जी हो सकता है.

आत्महत्या करनेवाले किसान का भाग्य अगर तगड़ा हुआ तो भारत की राजधानी के किसी चौक में उसकी प्रतिमा भी स्थापित हो जाती है. हालांकि इस देश के हर किसान और मजदूर की ऐसी किस्मत कहां है, परन्तु भाग्य आजमाने में क्या जाता है? मरना तो उसे हर हाल में है. चाहे खेत-खलिहान में फसल को बरबाद होता देखकर मरे, या घर में जवान बेटी को देखकर मरे, क्योंकि वह उसके ब्याह के लिए पैसे नहीं जोड़ पाता. इसीलिए मैं उसे सलाह देता हूं कि मरने के पहले कुछ सोच-विचार कर ले, फिर मरने की घोषणा करे, ताकि सरकार या किसी विपक्षी नेता का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित कर सके. इस प्रकार उसके मरने पर तगड़ा मुआवजा तो मिलता ही है, परिवारवाले कई पुश्त तक उसकी आत्मा की शान्ति के लिए हवन आदि करते रहते हैं, जिससे वह पिछले जन्म से मोक्ष पाकर उन्हीं के घर में पुनर्जन्म ले और फिर से आत्महत्या करे और परिवार को संपन्न बना जाए.

मरने के दो-चार नुस्खे और हैं, जिससे मुआवजे की गुंजाइश रहती है, परन्तु कई बार वह कारगर नहीं होती और मामला कोर्ट-कचहरी में लटक जाता है. मसलन, बहुत सारे

मजदूर शहर की सड़कों पर सोते हैं. रात के तीसरे प्रहर कोई दीवाना पागल प्रेमी शराब पीकर तेज गति से उनके ऊपर अपनी गाड़ी चढ़ा देता है. कुछ मजदूर मर जाते हैं, कुछ घायल हो जाते हैं. मजदूर अगर किस्मत वाले हुए तो अपराधी ही उन्हें मुआवजा देकर कोर्ट-कचहरी जाने से बच जाता है. अगर उनकी किस्मत खराब हुई तो मामला अदालत में जाकर लटक जाता है. फिर उनको मुआवजा तो दूर कोई पल भर की सांत्वना तक नहीं देता. आंसू तो पोंछने के लिए उनके पास हाथ ही नहीं होते.

दूसरी तरफ अपराधी सलमान खान की तरह दो घंटे के अंदर जमानत पाकर अकड़ता हुआ अपने घर चला जाता है, पीड़ित सड़क पर कराहते ही रह जाते हैं. इसलिए मजदूर भाइयों से मेरी सलाह है, कि इस नुस्खे को आजमाने का जोखिम न उठाएं.

एक और कारगर नुस्खा है, जो आत्मघाती तो है, परन्तु मुआवजा मिलने की पूरी गारण्टी होती है. साल में दो-चार तीर्थ यात्राएं अवश्य करें, खासकर पहाड़ी तीर्थ स्थानों की. वहां बस से जाएं. किसी न किसी तीर्थ स्थान से लौटते समय बस दुर्घटनाएं अवश्य होती हैं, जिसमें मरने पर सरकार शत-प्रतिशत मुआवजा देती है. इसमें मुआवजा थोड़ा कम मिलता है, परन्तु मिलता अवश्य है. अतः इस नुस्खे को आजमाने में कोई हर्ज नहीं है. इसमें आम के आम और गुठलियों के दाम अलग से मिलते हैं. भगवान के दर्शन और आत्मा को मोक्ष एक साथ ही मिल जाता है. परिवार के लिए जीविका का जुगाड़ अलग से हो जाता है.

भगवान ने मनुष्य को बुद्धि प्रदान की है, तो उसका प्रयोग करना भी सीख ले. भावुकता में आकर वह आत्मघाती कदम तो उठा लेता है, परन्तु अपने पीछे परिवार को मिलनेवाले कष्टों को भूल जाता है. अतएव ऐसे लोगों को मेरी यही सलाह है कि पहले तो ऐसा कोई कदम न उठाएं कि स्वयं की जान लेने की नौबत आए. जीवन दुःखों का सागर है, सुख तो उसके आस-पास उगी हुई हरी घास है. कष्टों से घबराकर अगर कोई जीवन से पलायन करता है, तो वह कोई उचित कार्य नहीं करता. परन्तु किसी समय विशेष में किसी व्यक्ति की क्या मानसिक दशा होती है, इसका आकलन करना भी किसी तीसरे व्यक्ति के लिए संभव नहीं है. सलाह देना बहुत आसान लगता है, परन्तु जो व्यक्ति दुःख और कष्ट के दरिया में तैर रहा होता है, उसकी दशा का अनुमान किसी और के लिए लगाना असंभव होता है. किसी की मौत पर बातें बनाना तो सभी को आता है.

तभी तो मैंने कहा, थोड़ा सोच-समझकर कोई कदम उठाएं। लेख के आरंभ में हास्य-व्यंग्य में कही बात को अपनी जीवन में प्रयोग में न लाएं। इस लेख से किसी को उकसाने का कोई मकसद नहीं है। मेरा मकसद केवल इतना है कि आपको जागरूक कर दें, कि सरकार और राजनीतिक दल किस प्रकार आम आदमी यानी किसान और मजदूर के जीवन से खिलवाड़ करते हुए सत्ता की चालें चलते हैं और उनको मोहरा बनाकर सत्ता के आलीशान सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं। किसान और मजदूर को क्या मिलता है? वहीं न, जो आप समझ रहे हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि खेती-किसानी का पेशा एक घाटे का सौदा है। इसमें लागत अधिक, आमद कम है। जो लोग मॉलों में जाकर बिना किसी मोलभाव के सौ रुपये की वस्तु हजार रुपये में खरीदकर खुश होते हैं और महंगी वस्तु खरीदने पर गर्व करते हैं, वही लोग किसानों द्वारा उत्पन्न की गई वस्तुओं को दस-बीस रुपये किलो खरीदने में महंगाई का रोना रोते हैं। किसान अपनी चीज तो इसी दर पर बेचता है, फायदा तो व्यापारी उठाते हैं। ऐसी स्थिति में किसान के पास आत्महत्या के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता, परन्तु दुख है कि हमारी सरकारें भी उनका मजाक बनाती रहती हैं। मुआवजे के नाम पर सौ-पचास रुपये के चेक पकड़ाती हैं। वह भी बाउंस होकर किसानों के पहले से ही घायल दिल को और ज्यादा घायल कर जाते हैं।

रिक्त

सूचना

वरिष्ठ कथाकार देवी नागरानी के विशेष सहयोग से प्राची सिन्धी कथा साहित्य पर आधारित एक विशेषांक निकालने की योजना बना रही है। आपसे निवेदन है कि सिन्धी साहित्य की विशिष्ट कहानियां, कहानीकारों के जीवन और रचनाओं पर आधारित लेख-आलेख हमें शीघ्राति शीघ्र भेजने का कष्ट करें।

संपादक

विशेष सूचना

आजीवन सदस्य/संरक्षक सदस्य

प्राची का संपादन एवं प्रकाशन एक व्यक्तिगत प्रयास है। यह एक दुष्कर एवं कंटक भरा मार्ग है। बिना अर्थ के आज के युग में कोई भी संस्था या निकाय जीवित नहीं रह सकती। खासकर पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन तो अत्यन्त जोखिम भरा है। इसमें लागत ज्यादा है, आमदनी कम। 'प्राची' वैसे भी अव्यावसायिक पत्रिका है, इसके वितरण व प्रसार का माध्यम केवल स्थायी ग्राहक हैं; जो कि नगण्य हैं, ऐसी अवस्था में पत्रिका का नियमित प्रकाशन असंभव सा प्रतीत हो रहा है।

पाठकों तथा लेखकों से मेरा अनुरोध है कि वह पत्रिका के वार्षिक, द्वैवार्षिक, त्रैवार्षिक, आजीवन व संरक्षक सदस्य बनकर इसे आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान कर सकते हैं। इसका चन्दा निम्न प्रकार है:-

वार्षिक	:	₹220
द्वैवार्षिक	:	₹420
त्रैवार्षिक	:	₹600
आजीवन	:	₹2500
संरक्षक	:	₹5000

आपसे विनम्र निवेदन है कि अधिक से अधिक संख्या में पत्रिका के सदस्य बनकर इसे आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान करें; ताकि यह निरन्तर समाज, साहित्य तथा संस्कृति की सेवा में अग्रसर रहे। चन्दा मनीआर्डर या चेक/बैंक ड्राफ्ट प्रज्ञा प्रकाशन के नाम पर भेजें।

आप प्रज्ञा प्रकाशन के चालू खाता संख्या 3058002125, सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, जबलपुर शाखा, में भी जमा कर सकते हैं। इसकी सूचना अपने पूरे पते और मोबाइल संख्या के साथ एस.एम.एस. द्वारा मोबाइल संख्या 9425323193 पर दें।

प्रज्ञा प्रकाशन (प्राची मासिक)

7, श्री होम्स, कंचन विहार, बचपन स्कूल के पास,
लामटी, विजय नगर, जबलपुर-482002 (म.प्र.)

ईमेल: prakashanpragya@gmail.com

प्रथम भाग**स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास****मधुरेश**

सन् 47 में चौदह अगस्त की रात और पंद्रह अगस्त की सुबह के बीच देश की स्वाधीनता बहुत कुछ एक झटके की तरह आई. वैसे ऐसे बहुत लोग थे जो इस रात सोए ही नहीं थे, लेकिन सोकर सुबह उठने वालों को कहीं कुछ अजूबा और चमत्कार नहीं लगा. बलवंत सिंह के 'काले कोस' के निसार की तरह जो लोग मर-पिचकर पाकिस्तान गए थे, उन्हें एक-सा ही आसमान देखकर हैरत हुई थी और कृष्णा सोबती की 'आजादी शम्भोजान' की तरह जो लोग यहीं रह गए थे, गली में हुई सजावट और झंडियों के बावजूद उनके लिए कमरे की वहीं बोसीदा दीवारों और झिलंगी खाट पर वे ही पुराने और बीमार से ग्राहक थे, जिनके साथ उसे पहले की तरह ही वही सब कुछ करना था. समाज और साहित्य में इस सच्चाई को सबसे पहले प्रगतिवादी लेखकों ने समझा. स्वाधीन भारत की सरकार राष्ट्रीय विकास के नाम पर सोवियत संघ का मॉडल ले रही थी और भारतीय कम्युनिस्टों के विरुद्ध दमन और उत्पीड़न की नीति पर मचल कर रही थी. नेहरू भ्रष्टाचार और काला-बाजारी के विरुद्ध लंबी-चौड़ी घोषणाओं के बावजूद, तेजी से फैलती और पसरती इस हाहाकारी बाढ़ के आगे असहाय थे. नेताओं के रातों-रात चोला बदलने के विद्रूपपूर्ण चित्र यशपाल ने 'झूठा-सच' के दूसरे खण्ड 'देश का भविष्य' में अंकित किए हैं. स्वाधीनता के बाद के एक वर्ष की अवधि के बीच यशपाल द्वारा लिखे गए 'विप्लव' के संपादकीय इस स्वाधीनता के सच को निर्ममता-पूर्वक उद्घाटित करते हैं. 'कांग्रेस का तानाशाही कायाकल्प' 'पंडित नेहरू अब भी समाजवादी!' 'जय प्रकाश नारायण और हैदराबाद के कम्युनिस्ट' 'अहिंसात्मक नादिरशाही' और 'स्वतंत्रता का दूसरा वर्ष' आदि इन कुछ संपादकीयों के शीर्षक ही इनमें निहित विचारों का आभास देने के लिए पर्याप्त हैं. अगले वर्ष अर्थात् 15 अगस्त 48 को यशपाल ने 'विप्लव' के दो पृष्ठों पर फहरते हुए राष्ट्रीय झण्डे का चित्र देते हुए मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा '15 अगस्त 48 के दिन' और इसके बाद की पूरी इबारत इस प्रकार है 'पंद्रह अगस्त के दिन राष्ट्र का तिरंगा झण्डा उन सरकारी इमारतों पर फहरायेगा जिनसे जनता के दमन के और सार्वजनिक अधिकारों को कुचलने के हुक्मनामों निकलते हैं. पंद्रह अगस्त के दिन राष्ट्र का तिरंगा झण्डा उन थानों और कोतवालियों पर फहरायेगा जहां से रोटी की पुकार करने

वाले निहत्थे किसानों और मजदूरों पर आक्रमण किया जाता है. पंद्रह अगस्त के दिन राष्ट्र का तिरंगा झण्डा उन जेलों पर फहरायेगा जिनमें निरपराध राजनैतिक बंदी सिसक रहे हैं, यह राजनैतिक बंदी भूखी जनता के वही प्रतिनिधि हैं जिन्होंने ब्रिटिश दमन की चोट को सबसे आगे बढ़कर सहा था. पंद्रह अगस्त के दिन इस झण्डे के नीचे जर्मीदार शाही सैकड़ों वर्षों तक निरीह जनता को लूटते रहने की वीरता के परिणाम में अपनी आय से अधिक मुआवजे का आश्वासन पायेगी. पंद्रह अगस्त के दिन राष्ट्रीय झण्डे की छत्र-छाया में पूंजीपति शाही अपनी मुनाफे की लूट पर राष्ट्रीय अधिकार को आंच न आने का आश्वासन पायेगी!’ (विप्लव, अगस्त, 48) थोड़ा लंबा होने पर भी यह उद्धरण अपनी पूर्णता में ही सार्थक है. बहुत संक्षेप में यह कांग्रेस सरकार के वर्गहितों का खुलासा करता है और इसके साथ ही प्रगतिवादी रचना-दृष्टि को भी रेखांकित करता है कि इस स्वाधीनता और उसका प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार के प्रति प्रगतिवादी लेखकों की सोच और प्रतिक्रिया क्या थी. पुराने प्रगतिवादियों में राहुल सांकृत्यायन, यशपाल और अमृत राय आदि का यही दृष्टिकोण था. तब अपेक्षाकृत नए और अल्पायु लेखकों में मुक्तिबोध की प्रतिक्रिया के साथ यह चित्र पूरा हो जाता है. थोड़ा आगे चलकर मुक्तिबोध अनुभव करते हैं, ‘आज 1963 में 46 वर्ष में मैं उद्विग्न हूं. मेरा इंसान अपने देश में भी रहकर एकांतिक और उन्मूलित जीवन व्यतीत कर रहा है. इसीलिए आज Lonliness निःसंगता का प्रश्न इतना प्रचण्ड है- Modernism का अंग. चाहे पाबलो नेरूदा हों या ज्यांपाल सार्त्र हों, या नेहरू हों. Mordenist लेखक एक अजीबोगरीब व्यक्तित्व रखता है, उसका एक कारक है उसकी उन्मूलितावस्था.... किंतु यशपाल की तरह प्रयास पूर्वक मैं निःसंदेह इस उन्मूलितावस्था को दूर कर सकता हूं...’ (मुक्तिबोध की आत्मकथा, विष्णुचंद्र शर्मा, पृ. 469) स्वाधीन भारत में, अपनी हताशापूर्ण मनः स्थिति में, समूचे भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए, मुक्तिबोध अपने और पत्नी शांता के लिए यशपाल और प्रकाशवती के संघर्षपूर्ण जीवन को याद करके प्रेरणा ग्रहण करते हैं. विप्लव-प्रकाशन से प्रकाशित लाल कवर वाली उनकी पुस्तकों को पढ़कर वे अपने और शांता के जीवन-संघर्ष के बारे में सोचते रह जाते हैं. उन मनःस्थिति में उनकी कला का सृजनकर्ता और उनकी कविता के पात्र आमने-सामने आ जाते हैं. तोल्सतोय या यशपाल की पृष्ठभूमि में वे महाकाव्य लिखने की तैयारी करने लगते हैं.

गजानन माधव मुक्तिबोध

मुक्तिबोध का ‘विपात्र’ (1970) स्वाधीन भारत में विकसित विरूपताओं को आइना दिखाता है. इसका नायक उन मध्यमवर्गीय युवाओं का प्रतिनिधित्व करता है जिनके जीवन में रोजमर्रा का मामूली संघर्ष भी उनके आगे हताशा का एक ऐसा जाल बुनता चलता है जिसके आगे अस्तित्ववाद की गहरी खाई है. विद्याकेंद्र में, आमतौर पर अच्छे और भले लोगों के बीच भी, उसके अंदर एक अनाम और अदृश्य बैचेनी तीव्रतर होती जाती है. वह जीवन बहुत सुविधापूर्ण भले ही न हो, लेकिन दैनिक जरूरतों को पूरा करके एक पारिवारिक सुरक्षा का भाव तो देता ही है. लेकिन उसकी स्वतंत्रता का धीरे-धीरे छीनना और उस पर काफी सूक्ष्म ढंग से होने वाला हमला, उस सुरक्षा के बीच भी उसे एक भयावह संकट के रूप में आता दिखाई देता है. उसकी स्वतंत्रता के लिए सबसे बड़ा खतरा उन मालिकों की ओर से है जो विद्याकेंद्र में आने और नौकरी करने वाले लोगों को अपने एहसान से मारते हैं. उन पर किया जाने वाला यह एहसान उन्हें एक ऐसी ‘कठपुतली’ में बदल देता है जिसकी डोर हमेशा उन मालिकों के हाथ में रहती है. लेकिन इन मारक और संक्रामक स्थितियों में भी विपात्र बना वह युवक, उसका समूचावर्ग कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं है. यह प्रतिरोधहीनता और अप्रिय समर्पण की स्थिति जैसे उसकी नियति बन गई है. मुक्तिबोध ने मध्यवर्ग की विभिन्न विशिष्टताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों की सृष्टि करके एक तरह से समूचे मध्यवर्ग की प्रतिरोधहीनता का चित्रण किया है. रावसाहब अपने बॉस का अनुकरण करके अपनी मध्यवर्गीय क्षुद्रता से मुक्त होना चाहते हैं. बॉस की तरह फूलों से प्रेम करके वह ऐसा करते हैं. उनका ज्ञान बिकाऊ ज्ञान है, जिसका एक मात्र लक्ष्य पद और पैसा है. ‘विपात्र’ का ‘मैं’ जो लेखक का ही प्रतिरूप है, ज्ञान को संस्कृति से जोड़कर उसकी वृहत्तर मानवीय भूमिका में विश्वास रखता है. विद्याकेंद्र में नौकर बुद्धिजीवी, बिना किसी बड़े आदर्श और आस्था के ज्ञान और सौंदर्य के प्रति इसी छद्म के शिकार हैं. अनुकरण और चापलूसी द्वारा वे अपने वर्ग की हीनता से मुक्त होना चाहते हैं. जैसी स्थितियां हैं, उनमें संघर्ष और समर्पण, हताशा और आस्था के बीच की सीमारेखा बहुत सूक्ष्म और धूमिल है. जगतसिंह मध्यमवर्ग की इस सारी जड़ता के बीच भी ऐसा कुछ देखता है जो पूरी तरह से हताश होने से बचाता है. ‘विपात्र’ में कोई सुगठित कथानक नहीं है, पात्रों का वैसा परिचित और प्रचलित रूप भी यहां नहीं है जैसा उपन्यास में आमतौर पर होता है. स्वाधीन भारत में तेजी से पनपने वाली

विद्रूपताओं के बीच व्यक्ति की छटपटाहट और जो भी कुछ अच्छा उसमें शेष है उसके बचाव की आकांक्षा को मुक्तिबोध बहुत प्रामाणिकता के साथ अंकित करते हैं।

राजेंद्र यादव

स्वाधीन भारत में एक ओर यदि व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आक्रमण का एक रूप 'विपात्र' प्रस्तुत करता है, तो उसका एक दूसरा रूप राजेंद्र यादव का 'प्रेत बोलते हैं' (1951) में दिखाई देता है—'सारा आकाश' उसी का परिवर्तित और संशोधित रूप है। अमर के संशय और निर्णयहीनता बहुत कुछ विपात्र के 'मैं' से मेल खाते हैं। सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों और जीवन को बांधने तथा जकड़ने वाली बहुविध विरूपताओं के प्रेत कदम-कदम पर व्यक्ति की आकांक्षा को बाधित करते हैं। अपनी इच्छाओं के अनुरूप जीवन की राह गढ़ने की स्वतंत्रता उसे नहीं है। राजेंद्र यादव का 'उखड़े हुए लोग' (1956) अपेक्षाकृत और भी व्यापक फलक और संदर्भों की रचना है। उपन्यास के दूसरे संस्करण की भूमिका में राजेंद्र यादव ने बर्लिन की एक शोध-छात्रा श्रीमती दागमार के पूछे गए सवाल का उल्लेख करते हुए संतोष व्यक्त किया है कि आठ वर्षों में पहली बार किसी ने उपन्यास के संबंध में एक मौलिक और जरूरी सवाल किया है। श्रीमती दागमार का सवाल है, 'जया और शरद का विवाह प्रेम-विवाह तो नहीं है। क्या मैं पूछ सकती हूं कि आपने उपन्यास की रचना इस प्रकार क्यों की?' इस सवाल का जवाब ही वस्तुतः उपन्यास के पूरे तिलिस्म की कुंजी है, जिससे रचना के परिवेश और रचनात्मक सरोकार तक पहुंचा जा सकता है।

'उखड़े हुए लोग' में राजेंद्र यादव एक ओर यदि हिंदू-विवाह के सामान्यतः स्वीकृत एवं प्रचलित रूप को चुनौती देते हैं वहीं वे प्रेम-विवाह को ही उसका एक-मात्र विकल्प मानने से भी इंकार करते दिखाई देते हैं। जिस काल खण्ड में उपन्यास घटित है, छठे दशक के आरंभिक दो वर्षों से भी कम अवधि, तब भारतीय समाज में प्रेम-विवाह न तो इतना बड़ा अजूबा था और न ही हौआ ही। लेकिन प्रेम-विवाह को स्वीकृति देने के बाद, राजेंद्र यादव की मूल रचनात्मक चिंता वाकई पृष्ठभूमि में चली जाती। 'उखड़े हुए लोग' में शरद और जया की बीच संबंधों की यह परिणति कैसी भी भावुकता से मुक्त है। जया की समस्या का समाधान तलाशने की प्रक्रिया में जब शरद एक विस्फोटक और नाटकीय स्थिति के निकट पहुंच रहा होता है तब भी शकुल नामक कोई पंजाबी लडकी उसके मन में है और, बाद

में, स्वदेश-महल में शरद का यह संबंध एक पारस्परिक समझौते के रूप में है जिसमें कहीं न कहीं उसके सवाल का जवाब भी शामिल है, जो बर्लिन की उस शोध-छात्रा ने लेखक से पूछा था।

अपनी इस नाटकीय यात्रा पर निकलने के बाद सूचनार्थ उमा दीदी को लिखे गए पत्र में शरद लिखता है... 'दीदी, हमें गर्व है कि हम समाज को हवाई आदर्शों और जबानी बहस-मुबाहिषों से नहीं, सक्रिय रूप से बदलने निकले हैं। देखें अब जिंदगी क्या रंग लाती है...' (उखड़े हुए लोग, छठा संस्करण' 81, पृ. 75) यह समझौता बहुत-कुछ सार्त्र और सिमोन द बोऊआ की तरह का समझौता है—जो दो दिन भी चल सकता है और पूरे जीवन भी। इसमें किसी के भौतिक विलीनीकरण पर जोर नहीं है। अपनी इस अनुभव-यात्रा में शरद और जया के आगे 'प्रेम' की कई पतें खुलती हैं। माया देवी बाकायदा देश बंधु की रखैल है—जिसके बारे में अपने पूर्व पति को मारने की चर्चा काफी आम है। दूसरी ओर सूरज और चंदा का रोमानी प्रेम है जो स्त्री को किसी खूंट की सुरक्षा अनिवार्य मानता है। सूरज के साथ जीने-मरने का वायदा करने वाली चंदा, पति के साथ उसे मिलने पर पहचानने से भी इंकार कर देती है। हिंदू पद्धति से विधिवत् विवाह के नाम पर कपिल और उसकी जड़ पत्नी है। पद्मा अपने दूर के रिश्ते के किसी भाई से प्रेम करती है, जो सामाजिक स्वीकृति के अभाव में अनाचार से अधिक कुछ नहीं है। इसी संदर्भ में 'उखड़े हुए लोग' को युद्धोत्तर कालीन स्त्री-पुरुष के बिगड़ते-बदलते-बनते संबंध का उपन्यास कहा गया है। 'उखड़े हुए लोग' में लेखक का आग्रह प्रेमे के सहज और स्वाभाविक रूप पर है जो समवयस्क स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे का पूरक मान कर चलता है।

स्वदेश-महल और देशबंधु के माध्यम से जो राजनीतिक-दृष्टि 'उखड़े हुए लोग' में सक्रिय है वह अवसरवादी, सत्ता और अधिकार पाकर, लगता है। यशपाल के 'देशद्रोही' के बद्रीबाबू ही देशबंधु के रूप में अवतरित हुए हैं। उसके चरित्र की पतों को लेखक ने असीम धैर्य से खोला है। देश की प्रायः सारी क्रांतिकारी विरासत, देश की स्वाधीनता के बाद, कैसे इन नव-धनाढ्यों की निजी धरोहर बनकर रह गई है, इसे देखने-समझने के लिये 'बिगुल' का उदाहरण काफी है। जो 'बिगुल' कभी स्वाधीनता-आंदोलन का प्रमुख अंग था, वह देशबंधु का निजी पत्र है। जो स्थितियां हैं उनमें शरद चीजों को देखकर अपनी भूमिका निर्धारित करने की सीमा तक ही जा पाता है। सूरज ही देशबंधु का वास्तविक प्रतिपक्ष है। अपनी छतियों पर रखे राक्षसों के सिंहासनों और उनकी स्वदेश-महल जैसी इंद्रपुरियों को पवस्त

करने का आह्वान उसे 'विगुल' से अलग कर देता है। किसी सुनिश्चित और सुनिर्धारित लक्ष्य के अभाव में समूचा मध्यवर्ग ही उखड़ा हुआ है। लेकिन अलग-अलग ढंग से विभिन्न स्तरों पर, उसके लिए अनुभव की जाने वाली बैचेनी में ही विरोध और परिवर्तन की आकांक्षा के सूत्र खोजे जा सकते हैं। इसके बाद भी राजेन्द्र यादव ने 'अनदेखे-अनजाने पुल' (1963) 'शह और मात'(1959) और मंत्रविद्ध' (1967) आदि उपन्यास लिखे, लेकिन रचनात्मक सरोकारों और फलक की व्यापकता की दृष्टि से वे अपनी आरंभिक उपलब्धियों तक कभी नहीं पहुंच सके।

हरिशंकर परसाई

स्वाधीनोत्तर भारत में जैसी स्थितियां बनीं, उनके अंकन के लिए व्यंग्य एक उपयोगी और अर्थपूर्ण माध्यम की संभावनाओं का संकेत देता है। विकृतियों और विद्रुपताओं के विरुद्ध व्यंग्य की भूमिका भारतेंदु युग से ही स्पष्ट थी। यह ठीक है कि हरिशंकर परसाई ने उपन्यास के क्षेत्र में व्यवस्थित और विधिवत कार्य नहीं किया। लेकिन इसके साथ यह भी सच है कि स्वाधीनता के बाद के दो दशकों के वास्तविक जीवन की पहचान उनके माध्यम से ही संभव है। उन्होंने लेखन को एक सामाजिक कर्म के रूप में स्वीकृति दी और यशपाल की तरह, लेखन को सामाजिक परिवर्तन के एक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया। 'रानी नागफनी की कहानी' (1960) उनका एक मात्र उपन्यास है। इसके भी अनेक प्रसंगों का उन्होंने स्वतंत्र कहानियों की तरह इस्तेमाल किया है। देश की स्वाधीनता के बाद, भारत में देखे गए सपनों के बदले नागफनी के जंगल उगाए गए—एक ऐसे समाज के रूप में जिसमें करुणा और संवेदनशीलता की जगह निरन्तर छीजती गई। रानी नागफनी, करोलामुखी और मुफतलाल जैसे पात्रों के माध्यम से परसाई संवेदनहीनता की इसी नागफनी का सच व्यक्त करते हैं। परसाई असाधारण लंबी स्वीप वाले लेखक हैं। सत्ताकामी नेताओं की भ्रष्ट राजनीति, भाई-भतीजावाद, चोरबाजारी और भ्रष्टाचार, शिक्षित बेरोजगारी और जातिवाद—इस सारे कूड़े-कचरे को साफ करने के लिए वे एक लंबी झाड़ू हाथ में लेकर निकलते हैं। वे जानते हैं कि सड़कर यह जनता की सेहत पर बुरा असर डालता है। अपने अन्य समकालीनों की अपेक्षा परसाई इस काम को अधिक प्रभावी ढंग से इसलिए कर पाते हैं, क्योंकि बदले जाते समाज का नक्शा भी उनके आगे काफी स्पष्ट है। वे शत्रु और मित्र का फर्क करके चलने वाले लेखक हैं। उनके यहां अतीत और भविष्य वर्तमान की निद्रुपताओं का आच्छादन

मात्र है जिसमें समय को विभाजित और विखंडित करके देखने का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। वहां सब कहीं मनुष्य की चिंता ही मुख्य रचनात्मक सरोकार बनकर उभरती है।

श्रीलाल शुक्ल

श्रीलाल शुक्ल एक उपन्यासकार के रूप में अपनी उपस्थिति भले ही 'अज्ञातवास' से दर्ज करा चुके हों, लेकिन एक लेखक के रूप में उनकी वास्तविक पहचान उनके व्यंग्य-उपन्यास 'रागदरबारी' (1968) से ही बनती है। यहां वे 'व्यंग्य और उपन्यास' के दो परस्पर विरोधी अनुशासनों का तनाव झेलकर व्यंग्य-उपन्यास की संभावनाओं को उजागर करते हैं। 'रागदरबारी' अपनी संरचना में बहुत-कुछ एक ऐसे चमत्कारी झोले की तरह है जिसमें लेखक रास्ता चलते सब कुछ उठाकर रखते चलने की छूट चाहता है। अपने समय की विद्रुपताओं के प्रति वह एक तीखी और तल्ख टिप्पणी है। श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य में करुणा का तत्व लगभग नहीं के बराबर है। इसके बदले वे पैरोडी और कार्टून के अधिक निकट हैं। 'रागदरबारी' स्वाधीन भारत में सब कहीं बनते शिवपालगंज की सच्चाई को उसी भदेस शैली में उभारता है। लेकिन उत्पीड़ितों के लिए उसमें करुणा का अंश नहीं के बराबर है। एक व्यंग्य उपन्यास के रूप में यही उसकी सीमा भी है। मंच पर सुनी गई किसी पैरोडी की तरह वह अपने प्रभाव में अवश्य लेता है, लेकिन वह कोई दूरगामी और स्थायी प्रभाव नहीं होता। यदि अपने समय को परिभाषित करने और उसमें रचनात्मक हस्तक्षेप को ही रचना की सफलता का निकष बनाया जा सके तो हरिशंकर परसाई का सारा लेखन मिलकर एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है जबकि उपन्यास के क्षेत्र में उन्होंने जो प्रयोग किए हैं, वे उपन्यास की विधा में कोई बड़ा ओर मौलिक योगदान करते नहीं दिखाई देते। उनका महत्व क्षेत्र में उन्होंने जो प्रयोग किए हैं, वे उपन्यास की विधा में कोई बड़ा और मौलिक योगदान करते नहीं दिखाई देते। उनका महत्त्व व्यंग्य की दृष्टि से अधिक है, उपन्यास की दृष्टि से कम। श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य उपन्यास को स्वीकृति देते और दिलवाते हैं। लेकिन व्यंग्य की सामाजिक और निर्माणकारी भूमिका कदाचित् उनके आगे बहुत स्पष्ट नहीं है। इसी कारण वे प्रायः ही हास-परिहास और शब्दों से खिलवाड़ के भी शिकार होते हैं। इन उपादानों को जैसे वे क्षतिपूर्ति के रूप में इस्तेमाल करना चाहते हैं।

उनका 'पहला पड़ाव' (1987) दिहाड़ी मजदूरों की समस्याओं पर केंद्रित है। तीन स्तरों पर चलने वाली कहानी का अन्तर्वर्ती सूत्र

सते है. अपनी शैक्षिक पृष्ठभूमि और सामाजिक चेतना के परिणामस्वरूप जब वह समाज के अनेक स्तरों पर, अनेक रूपों में, व्याप्त भ्रष्टाचार को देखता है, तो अपने सपनों के खोल में सिमट कर वह उससे लड़ने की तैयारी करता है. लेकिन इसका अहसास भी उसे बखूबी है कि सपनों के काठ से बनी इस तलवार से देर तक नहीं लड़ा जा सकता. निम्न मध्यवर्ग से आए सते और दिहाड़ी मजदूरों के बीच आत्मीयता का सूत्र यह है कि वह द्वारा अपना काम निकालता है. अपने समय के अनेक सवाल और मुद्दों के कारण ‘पहला पड़ाव’ स्फीति और विस्तार का शिकार होता है. यहां भाषा में एक खास तरह का चुलबुलापन है, जो शब्दों से खिलवाड़ को उकसाती है. राजनीति की विद्रूपताओं को लेखक अतिरंजित रूप में फोकस करता चलता है, लेकिन इससे मूलकथा संकुचन का शिकार होती है और एक ऐसा फैलाव उपन्यास पर हावी होता जाता है जिसकी सार्थकता प्रायः हमेशा ही संदिग्ध बनी रहती है. व्यंग्य-उपन्यास की संरचनात्मक सीमाओं को समझकर ही श्रीलाल शुक्ल मूलतः मध्यमवर्ग के लेखक हैं. ‘मकान’ (1976) और ‘सीमाएं टूटती हैं’ (1973) में वे व्यंग्य का उपयोग करते हुए भी व्यंग्य-उपन्यास की सीमा से बाहर निकलते हैं. अपने एक पत्र में राजेंद्र यादव ने इन उपन्यासों के सुसंगठित और सुलिखित होने की प्रशंसा करते हुए ‘रागदरबारी’ के बाद इस शैली से बाहर आने के लिए भी इन्हें सराहा है—‘रागदरबारी’ के बाद इस शैली का सधाव और निथरना सचमुच एक सुखद विस्मय से भर जाता है. वह ‘बिखराव’ भी इसमें नहीं है. आपने गठन को खूबसूरती से बनाए रखा है...’ (‘मकान’ 7 दिसम्बर’ 76 का पत्र, अठारह उपन्यास’ पृ. 252). ‘सीमाएं टूटती हैं’ की व्याख्या मैंने कभी ‘एक स्त्रीय प्रेम कथा’ के रूप में की थी. यह अपराध-कथा के तत्वों के बीच विमल और चांद की प्रेम कहानी जिसमें चांद उम्र के बड़े फासले के बावजूद अपने पिता के मित्र विमल को गहरी तन्मयता से प्रेम करती है—उम्र और पारिवारिक-सामाजिक प्रतिक्रियाओं की सारी सीमाओं को तोड़कर.

अमरकांत

नई कहानी आंदोलन के दौर में जब अमरकांत एक बेहद संभावनापूर्ण लेखक के रूप में अपनी पहचान बना रहे थे, ‘सूखा पत्ता’ (1959) नामक उनका उपन्यास लोगों का ध्यान खींचता है. अपनी कहानियों की तरह अमरकांत अपने उपन्यासों में निम्न मध्य वर्गीय जीवन को संवेदनशीलता के साथ अंकित करते हैं. ‘सूखा

पत्ता’ के बाद उनके अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासों में ‘ग्राम सेविका’, ‘कंटीली राह के फूल’, ‘काले-उजले दिन, (1969) और ‘दीवार और आंगन’ (1969) आदि का उल्लेख किया जा सकता है. अपने उपन्यासों में अमरकांत अपनी कहानियों से भिन्न, मूलतः रोमानी और कैशोर आकर्षण को अनुभव करते हैं. ‘सूखा पत्ता’ में वे क्रांतिकारियों के प्रति इसी रोमानी और कैशोर आकर्षण को अनुभव करते हैं. इसका किशोर नायक कृष्ण कुमार क्रांतिकारियों के बीच आकृष्ट होकर स्वयं एक दल के संगठन का प्रयास करता है. लेखक क्रांतिकारी चेतना का कोई विवेकपूर्ण उपयोग नहीं कर सका है, और कृष्णकुमार तथा उर्मिला के प्रेम-संबंधों में उलझ जाता है. ‘कंटीली राह के फूल’ का अनूप भी किसी पड़ोसी गांव से आकर विश्वविद्यालय में प्रवेश करने वाला नवयुवक है. खिड़की फांदकर कक्षा छोड़ना और रिकशे पर आती-जाती लड़कियों का पीछा करना उसने भी शुरू कर दिया है. अनूप और कामिनी के प्रेम के सहारे ही उपन्यास विकसित होता है. कामिनी को विश्वास है कि अनूप उसके सम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष कर सकता है. उपन्यास का शीर्षक कामिनी की आस्था और अंतर्दृष्टि को तो व्यंजित करता ही है, इसी नाम की संस्था का संदर्भ भी उसमें समाहित है. वस्तुतः यहीं से लेखक की दृष्टि व्यक्ति से समाज और राष्ट्र की ओर मुड़ती है. नई पीढ़ी के परिश्रम, कर्मठता और ज्ञान के अन्वेषण की आकांक्षा को ही इस संस्था के उद्देश्य के रूप में रेखांकित किया गया है. लेकिन व्यवहार के स्तर पर उपन्यास में इनके लिए कहीं किसी प्रकार का प्रयास नहीं दिखाई देता.

‘काले उजले दिन’ एक मध्यवर्गीय युवक के घटनाहीन जीवन की सपाट कहानी है. परिवार में विमाता की उपस्थिति के परिणाम स्वरूप उसके व्यक्तित्व का विघटन उसके स्वाभाविक विकास में बाधक बनता है. पत्नी कांति के सारे त्याग और बलिदान के बावजूद वह उसे प्रेम नहीं कर पाता. उसके इस लंबे काले दिन में उसकी सहयोगिनी रजनी उजाला बनकर उपस्थित होती है. रजनी उसे संपूर्ण मन से प्यार करती है. लेकिन उसके जीवन की वास्तविकता जानकर, वह ईमानदारी से उससे बाहर निकलना चाहती है क्योंकि वह कांति को धोखा नहीं देना चाहती. कांति त्याग और सेवा-भावी स्त्रियों की परम्परा में अपनी अतिरंजनाओं के कारण ही विशिष्ट है. रजनी एक खुलेमन की कामकाजी युवती है. कांति की मृत्यु उसे फिर रजनी के निकट आने का अवसर मुहैया कराती है. रूढ़ियों और अंतर्विरोधों वाले निम्न मध्यवर्ग की यह कहानी सपनों और रोमानी कल्पनाओं के सहारे विस्तार पाती

है. समाज में पुरुष के वर्चस्ववादी रूप और उसके द्वारा पत्नी को पहुंचाए जाने वाले नुकसान का उल्लेख किसी गहरे रचनात्मक उपयोग का प्रमाण नहीं बन सका है. अमरकांत अपने इन उपन्यासों में निम्न-मध्य-वर्गीय मानस को पर्याप्त सहज और विश्वसनीय रूप में अंकित करने की कोशिश करते हैं. 'सूखा पत्ता' में वे अंतर्जातीय विवाह को स्वीकृति नहीं दे पाते. 'ग्राम सेविका' में साम्यवादी आंदोलन की दुर्बलता के कारण गांधीवाद जीतता दिखाई देता है. 'दीवार और आंगन' में आंगन उन्मादी देहाकांक्षा का प्रतीक है जो अंततः प्रेम की दीवार से संयत और नियंत्रित होती है. लेकिन कुल मिलाकर उनके ये उपन्यास कोई गहरा कलात्मक प्रभाव नहीं डालते. उनकी कहानियों का मूलभूत वैशिष्ट्य यहां सिरे से गायब है. जगह-जगह पर सिर्फ उनकी क्षमताओं के स्फूर्ति चमकते दिखाई देते हैं. जो किस्सागोई और प्रेम कहानियों की रोचकता में दबकर बुझ जाते हैं.

अपनी टिप्पणी में मुक्तिबोध ने आधुनिक लेखक के संदर्भ में जिस उन्मूलितावस्था, अजीबोगरीब व्यक्तित्व और अकेलेपन की चर्चा की है, स्वाधीनोत्तर भारत में जो और जैसी स्थितियां तेजी से विकसित हुई थीं, उनमें लेखक गहरे आत्मसंघर्ष के बाद ही उनसे बच सकते थे. अपने सिलसिले में स्वयं मुक्तिबोध ने ऐसे आत्म-संघर्ष की चर्चा भी की है. जो लेखक अधिक अध्ययनशील और यूरोपीय प्रभावों के लिए खुले थे, उनके लिए यह संकट और भी स्वाभाविक था. जेम्स ज्वाइस का 'यूलिसिस' निकलने पर टी.एस. एलियट ने टिप्पणी करते हुए कहा था कि इसके विषय में मुख्य बात यही है कि इसने उपन्यास को समाप्त कर दिया है और अब उपन्यास आगे से वैसा ही उपन्यास नहीं रह सकता. हिन्दी में भी आधुनिकतावादियों का एक ऐसा वर्ग उदित हो रहा था जो आंद्रे जीद की तरह मानता था कि डेविल-शैतान-के बिना कोई बड़ी रचना संभव ही नहीं है. शीतयुद्ध के उस दौर में सोवियत-संघ का विरोध इन लेखकों के लिए सबसे बड़ा रचनात्मक मुद्दा था. चूंकि इससे उन्हें लेखक के व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर जकड़बंदी का बोध होता था, इसके विरोध को वे विचार और विचारधारा के निषेध तक ले जाते दिखाई देते हैं. जो लेखक मुक्तिबोध की तरह गहरे आत्म-संघर्ष की आंच नहीं सह सके, उनका पिघल जाना ही उनकी एक स्वाभाविक परिणति थी. प्रकृति और परिणाम में अंतर के बावजूद कृष्ण बलदेव वैद, राजकमल चौधरी, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, रमेश बक्षी, महेन्द्र भल्ला,

जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मनोहर श्याम जोशी और श्रीकांत वर्मा आदि इसी श्रेणी और वर्ग के लेखक हैं. इनकी रचनात्मक चिंताएं भिन्न होने पर भी, मुक्तिबोध वाली उक्त टिप्पणी की अनेक बातें इनमें समान हैं.

कृष्ण बलदेव वैद

कृष्ण बलदेव वैद ने उपन्यास के क्षेत्र में 'उसका बचपन' (1957) के साथ प्रवेश किया. अपने मूल रूप में यह श्रीपत राय और भैरव प्रसाद गुप्त द्वारा प्रकाशित-संपादित मासिक 'उपन्यास' नामक पत्रिका में छपा था—जो 'कहानी' की सहयोगी पत्रिका के रूप में शुरू हुई थी. इसमें वीरू नामक एक बच्चे के माध्यम से उसके समूचे परिवेश को गहरी प्रामाणिकता और संवेदनशीलता के साथ अंकित किया गया है. इसमें कोई सुगठित कथानक नहीं है परिवेश और उसमें जीनेवाले लोग हैं जिनके व्यक्तित्व की आधाराभूत विशिष्टताओं एवं उनके कारक तत्वों को उभारने की कोशिश की गई है. इतिवृत्त और ब्यौरों से बचाव की दृष्टि से नेमिचंद्र जैन ने एक 'काव्यात्मक वक्तव्य' के रूप में इसकी प्रशंसा करते हुए इस पर विस्तारपूर्वक लिखा. बिंबों, प्रतीकों और अन्य काव्योपकरणों के उपयोग द्वारा लेखक यथार्थ को यथार्थवाद की प्रचलित शैली का अतिक्रमण करके अभिव्यक्त करता है. पूरे परिवेश पर छाया हुआ कड़वा, कसैला और काला धुआं एक प्रेतात्मा और काले सांप की तरह जी का जंजाल बना हुआ है. इसी परिवेश के बीच वीरू, जलालपुरनी और देवी के जीवन और व्यक्तित्व के अन्य चित्र, गहरा प्रभाव छोड़ते हुए, उभरते चलते हैं. इसी के बीच लेखक इस धुएं की मानिन्द ही सघन अवसाद और जीवन को अर्थहीन बनाने वाली स्थितियों तक उतरता है. तब यथार्थवाद और विचारधारा के निषेध के उत्साह में आलोचकों का ध्यान इस ओर बिल्कुल नहीं गया कि इसमें ऐसे नकारात्मक तत्व भी बहुतायत से थे जो आगे चलकर कृष्ण बलदेव वैद की एक विशिष्ट पहचान बने. 'उसका बचपन' का परवर्ती खंड 'गुजरता हुआ जमाना' (1981) इसकी अच्छाइयों को त्यागकर वैद को एक भिन्न रूप में पहचाने जाने को प्रेरित करता है. 'उसका बचपन' में जिसे यथार्थवाद का अतिक्रमण कहा गया वैद की परवर्ती रचनाओं में वह यथार्थाभास भी गायब है. विचारधारा के अंत और निषेध के नाम पर सैमुएल वेकेट की भांति वे ऊल-जलूल और अमूर्तन के प्रवक्ता बन जाते हैं. 'नसरीन', 'विमल उर्फ जाएं तो जाएं कहां' (1974) 'दर्द-ला-दवा' (1980) 'काला-कोलॉज' और 'नर-नारी' (1996) आदि उनके प्रायः सभी उपन्यास जिस शैली

में लिखे गए हैं वह जीवन और वास्तविकता के बहिष्कार को ही स्वीकृति देती है. इसे स्मृतियों के विस्तार और एक लंबे आत्मालाप के रूप में लिखा गया है. बांझ मांजी अपने पति की नामर्दी की सजा भुगत कर जीवन भर बांझ होने का दर्द भोगती-भुगतती है. अपने बारे में उसकी आत्मस्वीकृति है, 'अंदर एक समंदर सुहानी यादों का. सपनों में पानी ही पानी. पुरानी यादों का. यादें जितनी पुरानी उतनी ही सुहानी. मैं समंदर में डूब यादों की सुनहरी मछलियां पकड़ती रहती हूं...' (नर-नारी, पृ. 24) उपन्यास के अनेक नारी-पात्र, जो भारत में हैं और भारतीय होते हुए भी अमेरिका में बसे हैं, नारी-मुक्ति के नाम पर मुक्त, उच्छृंखल और अराजक यौन जीवन जीते हैं और 'चूत चालाकियां' जैसी भाषा और जीवन-दर्शन को विस्तार देते हैं. पूरे उपन्यास में किसी का किसी से कोई नार्मल सेक्स-संबंध नहीं है. वैद के पिछले उपन्यासों से यह अर्थ में थोड़ा भिन्न है कि इसमें पठनीयता बनी रहती है और इस पठनीयता का कारण भी एकदम अमूर्तन और ऊल-जलूल शैली को छोड़कर, बेहद क्षीर्ण ही सही, कथा-तत्व की ओर उनकी वापसी है. राबर्ट मुसिल के उपन्यास 'द मैन विदाउट क्वालिटीज' के नायक उलरिच से जब पूछा जाता है कि यदि वह ईश्वर की जगह हो तो वह क्या करेगा? इसका उत्तर देता हुआ वह कहता है कि तब वह दुनिया से यथार्थ के उन्मूलन को बाध्य होगा. इन्हीं यूरोपीय आधुनिकतावादियों की तरह वैद भी यथार्थ और विचारधारा के निषेध को कला की सफलता के रूप में देखते हैं और इस मामले में वे अकेले नहीं हैं.

राजकमल चौधरी

राजकमल चौधरी अ-कविता आंदोलन के कवि थे. उनकी कविता और कहानियों की तरह उनके उपन्यास पर भी अमेरिकी बीट कति गिंसबर्ग का प्रभाव स्पष्ट है. उनके यहां प्रेम, दाम्पत्य, सुख, परिवार और समाज जैसे शब्द निरर्थक और बेमानी हैं. आज के जीवन का बिखराव और बहेतूपन उनके उपन्यासों की खास पहचान है. ...बंधे रहने में क्या सुख है? अगर धूमकेतु की तरह चमक कर बुझ जाने की संभावना हो, तो क्यों नहीं टूट लिया जाए? क्या होता है प्रेम? क्या होता है दाम्पत्य सुख? क्या होता है परिवार? क्या होता है समाज? (नदी बहती थी, (1961) पृ. 27) उनके पात्र भविष्य की बात नहीं करते, क्योंकि फिर उन्हें मूल्य और आस्था की बात भी करनी होगी. वे महज वर्तमान में जीवित हैं और बीते हुए के प्रति उनमें किसी प्रकार का कोई पश्चाताप नहीं है, बीते हुए का पछतावा नहीं. आगे होने वाले की

फिक्र नहीं. जीने का एक मात्र तरीका रह गया है वर्तमान को जिए जाना. पहले अंधेरा था. फिर अंधेरा होगा. अभी अगर रोशनी की एक हल्की-सी किरन बाकी है तो उसे जी लो. यह किरन ही जिंदगी है. ये किरन... ये फूल, (मछली मरी हुई (1966) पृ. 63) राजकमल चौधरी का रचना-कर्म उपलब्धियों से अधिक संभावनाओं की दृष्टि से उल्लेखनीय है. 'नदी बहती थी' में सोनाली और सोमेश गांगुली पर्याप्त संभावनापूर्ण पात्र हैं. राजनीतिक-सामाजिक विद्रुपताओं के प्रति उनकी दृष्टि काफी पैनी है. जूझने का माद्दा भी उनमें है. लेकिन कोई सुस्पष्ट मूल्य-दृष्टि उन्हें नियंत्रित नहीं करती. इसीलिए राजनीतिक स्थितियों के विरुद्ध उनका आक्रोश एक अराजक आक्रोश से आगे नहीं जाता. 'एक अनार एक बीमार(1965) की भूमिका में लिखा गया है, ईश्वर और सीता के माध्यम से इसमें कलकत्ता के समकालीन मध्यवर्गीय जीवन को यथार्थ विरोधाभासों में लिखने की कोशिश हुई है. पैसों या प्रतिष्ठा के लिए मन-गढ़ंत या झूठ लिखना उससे नहीं हुआ. सच लिखने में जो भी खतरे हैं, उसने बर्दाश्त किए हैं...' (एक अनार:एक बीमार, भूमिका-पृ. 6) आलोचक लेखक के नंगेपन को नंगापन न कहें, इसलिए आलोचक को 'नामर्द' या पुलिस मनोवृत्ति का 'आलोचक' कहकर उसका मुंह बंद करने की कोशिश की गई है. नए और उत्तेजक विषयों और चौकाऊ प्रसंगों के प्रति राजकमल की दृष्टि अधिक जाती है. 'मछली मरी हुई' लेखिक-संबंधों पर केंद्रित है-आगे चलकर केवल सूद ने इसी विषय पर 'मुर्गीखाना' (1972) लिखा. उनकी कहानियों की तरह उनके उपन्यासों में भी अनेक देशी-विदेशी कलाकारों संगीतज्ञों और फिल्मकारों के संदर्भ भरे-पड़े हैं. 'बीस रानियों का बाइस्कोप' (मरणोपरांत प्रकाशित, 1972) में शिवाली सिंह सस्ती और बाजारू फिल्मों के प्रति अपनी सारी घोषित वितृष्णा के बावजूद वही सब करता है. कुंदन से वह कहता है, ताकत तुममें है और मुझमें भी है लेकिन हम लोगों की पद्मिनी भांडों के पाले पड़ गई है...' (अणिमा-3, पृ. 55) लेकिन इस विसंगतिपूर्ण स्थिति के विरुद्ध कोई प्रतिरोध-चेतना इन पात्रों में नहीं है. वे अपने पात्रों की उपमाएं जीवन से नहीं, किताबों से देते हैं. 'देहगाथा' में किसी भी दर्शन या सिद्धांत के प्रति अपनी घृणा व्यक्त करते हुए लेखक सिर्फ देखने वाली आंख पर विश्वास करने की बात कहता है. किसी लाजिक, कानून और मौरेलिटि को ये पात्र इसलिए अस्वीकारते हैं क्योंकि, उनकी दृष्टि में, ये धोखा देने वाली चीजें हैं. जीवन से राजकमल चौधरी का साक्षात्कार अधूरा और सतही है. उनके उपन्यासों में कच्चा माल तो बहुत है, लेकिन कलात्मक

उपलब्धियों और जीवन-वास्तव के अंकन की दृष्टि से उनकी सीमाएं बहुत स्पष्ट हैं. राजकमल चौधरी का लेखन गलत प्रभावों के तहत एक संभावनाशील शुरुआत के करुण अंत का उदाहरण है. यह अंत और भी त्रासद इसलिए लगता है, जब हमें पता चलता है कि उनकी अंतिम इच्छा जनता की ओर आने की थी जिसे उन्होंने 'आलोचना' में सन् 67 के 'चुनाव के बाद भारत' विषय पर आयोजित एक परिचर्चा में व्यक्त किया था और जिस पर अमल करने का अवसर उन्हें कभी नहीं मिला.

मोहन राकेश

उपन्यास की ओर मोहन राकेश अपेक्षाकृत काफी बाद में आए. जब उनका 'अंधेरे बंद कमरे' (1961) प्रकाशित हुआ, नई-कहानी आंदोलन के एक प्रमुख सूत्रधार के रूप में वे पर्याप्त ख्याति पा चुके थे. तब तक उनका प्रसिद्ध नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' भी प्रकाशन और मंचन के बाद, उन्हें नाटककार के रूप में स्थापित कर चुका था. 'अकेलेपन की यंत्रणा' मोहन राकेश की प्रिय थीम रही है. घर-परिवार से छिटक कर वे बार-बार उसके प्रति गहरी ललक के साथ आकृष्ट होते हैं. अपने असामयिक निधन के कारण अपने संक्षिप्त रचना-काल में उन्होंने तीन उपन्यास लिखे- 'अंधेरे बंद कमरे' के बाद 'न आने वाला कल' (1968) और उनके निधन से कुछ पूर्व प्रकाशित, 'अंतराल' (1972). कश्मीर के हांजियों के ऊपर लिखा गया उनका उपन्यास 'कांपता हुआ दरिया' धारावाहिक रूप से 'नई कहानियां' में प्रकाशित हुआ था, लेकिन वह पूर्ण नहीं हुआ. पारिवारिक बिखराव के परिणामस्वरूप उनके भटकाव को ही वह एक दूसरे ढंग से संकेतित करता है. अपने लेखन में मोहन राकेश सारी आत्मपरकता के बावजूद, 'परिवार', 'घर' और 'विवाह' जैसी संस्थाओं के संपूर्ण निषेध तक नहीं जाते. लेकिन इन्हें वे अपनी इच्छा और शक्तों के अनुरूप ढालना चाहकर अपने ढंग से जीना अवश्य चाहते हैं. आकांक्षा और हताशा का यह तनाव उनके साहित्य में सर्वत्र व्याप्त हुआ है. 'अंधेरे बंद कमरे' में नीलिमा और हरबंस का टूटता बिखरता हुआ पारिवारिक और दाम्पत्य जीवन कला, प्रेम और स्वतंत्रता जैसे कुछ अन्य प्रत्ययों को भी समेट कर चलता है. सुषमा स्त्री में आए परिवर्तन को बहुत सार्थक ढंग से मूर्त करती है. यह कलाकारों और स्वाधीनता के बाद के बुद्धिजीवियों के संघर्ष और छटपटाहट की कहानी है जिसे मोहन राकेश ने कलात्मक सजगता के साथ प्रस्तुत किया है.

'न आने वाला कल' एक पहाड़ी नगर, संभवतः शिमला जहां एक स्कूल में मोहन राकेश ने कुछ दिनों स्वयं अध्यापन किया था, के एक मिशनरी स्कूल के हिंदी अध्यापक मनोज सक्सेना के अंतिम कुछ दिनों की कहानी है-त्यागपत्र देने का निर्णय करके स्कूल छोड़ने तक की कहानी. उसके व्यागपत्र का कारण जहां स्कूल के अनावश्यक अनुशासन और धार्मिक जकड़ बंदी में निहित है, वहीं पत्नी के कारण पैदा हुआ तनाव भी है. शोभा से विवाह करके उसने अपनी बढ़ती उम्र के अकेलेपन को भरने की कोशिश की थी, लेकिन चंद महीनों में ही उसे लगने लगता है कि इससे वह और अधिक अकेला और खाली हो गया है. उपन्यास में आए बिखराव का कारण संभवतः यह है कि लेखक अपने दृष्टि-बिंदु के संबंध में कुछ सुनिश्चित नहीं कर पाता है. कभी वह अपने स्कूल के परिवेश के प्रति अपनी खीझ और वितृष्णा का इजहार करता है तो कभी दाम्पत्य जीवन की असफलता से उपजी हताशा का. एक बेहतर भविष्य का जो सपना उसने देखा था वह अंततः एक न आने वाला कल ही बना रहता है.

इसी प्रकार 'अंतराल' भी सीमित सरोकारों और दाम्पत्य संबंधों के छोटे-से संसार की कहानी है. यह मूल रूप से कुमार और श्यामा की कहानी है. लता और देवकी उपन्यास में कहीं नहीं आते लेकिन न होकर भी वे इस तरह कुमार और श्यामा पर हावी हैं कि उन्हें कभी सहज भाव से एक-दूसरे के निकट नहीं आने देते. श्यामा और कुमार के परिचय से पूर्व उन दोनों का ही अपना-अपना निजी संसार बन-बिगड़ चुका है. उसी के मलबे पर उन्हें एक नए निर्माण की संभावनाएं दिखाई देती हैं-लेकिन वैसा हो नहीं पाता, क्योंकि वे दोनों कभी अपने अतीत से मुक्त नहीं हो पाते. सच यही है कि अपने पहले संबंधों को काट फेंकना कभी मुमकिन नहीं होता और वे संबंध जब जाने-अनजाने नए संबंधों के लिए सांचा बन जाते हैं, तो जीना मुहाल कर देते हैं, न श्यामा चाहती है कि उसे लता के पैमाने से नापकर कोई फैसला किया जाए, न ही कुमार चाहता कि उसकी कसौटी देवकी हो, जो श्यामा के जीवन में अब न होकर भी अदृश्य रूप से मौजूद है. तनाव और हताशा की अंतर्वर्ती परतों को राकेश धैर्यपूर्वक बुनते और खोलते हैं. लेकिन रचना का बेहद सीमित संसार उनकी अपनी कला-क्षमता की भी सीमा बन जाता है.

स्वाधीनता के बाद हमारे परंपरागत संस्कारों, विवाह, परिवार, दाम्पत्य आदि, के प्रति एक गहरा नकार-भाव दिखाई देता

है. सार्त्र और बोऊआ के आपसी समझौते जैसे नए संबंधों के प्रति भी लेखकों-कलाकारों में आकर्षण बढ़ा. एक अजब से खिलंदरे अंदाज में महेंद्र भल्ला 'एक पति के नोट्स' (1966) में दाम्पत्य जीवन की ऊब और एक रसता को अंकित करते हैं—दाम्पत्य संबंधों की स्वीकृति 'ऊष्मा को रौंदते-पछाड़ते हुए'. इसकी अपेक्षा उनके परवर्ती उपन्यास 'दूसरी तरफ' (1976), 'उड़ने से पेशतर' (1987) और 'दो देश और तीसरी उदासी' अधि-क बड़े फलक पर लिखे. जो गंभीर रचनात्मक सरोकारों का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं. इंग्लैण्ड में प्रवासी भारतीयों की मानसिकता और रंगभेद के परिणाम स्वरूप उनमें गहरी बैठी असुरक्षा की भावना को महेंद्र भल्ला पर्याप्त विश्वसनीय रूप में अंकित करते हैं. महेंद्र भल्ला के ये उपन्यास इंग्लैण्ड में अंग्रेजों की उस छवि को सहज ही तोड़ते हैं जिसे अपने एक निबंध में निर्मल वर्मा ने उनके पक्ष में एक तार्किक परिणति तक पहुंचाने की कोशिश की है. विवाह की संस्था के प्रति वितृष्णा तक पहुंचा यही निषेध-भाव रमेश बक्षी में भी मौजूद है. 'अटारह सूरज के पौधे, (1957), बैसाखियों वाली इमारत' (1971) और 'खुले-आम' (1957) में वे एक संस्था के रूप में विवाह की कूडनेस और व्यर्थता को उद्घाटित करते हैं. लेकिन इसके लिए वे कोई विश्वसनीय तर्क नहीं गढ़ते, आवेग और एक तर्कहीन आवेश द्वारा वे सिर्फ अपनी घृणा को ही व्यक्त कर पाते हैं. इन संस्थाओं के प्रति किसी गंभीर मुठभेड़ का कोई साक्ष्य उनके यहां उपलब्ध नहीं है. 'चलता हुआ लावा' (1968) में वे बिना किसी पुष्ट वैचारिक आधार के उन स्थितियों की ओर संकेत करना चाहते हैं, जो नायक को अ-नायक की भूमिका में ढाल रही हैं. इसी पृष्ठभूमि में कांता भारती का 'रेत की मछली' (1975) इसलिए एक उल्लेखनीय उपन्यास है क्योंकि वह सार्त्र और बोऊआ जैसे समझौते के परिणाम-स्वरूप एक विधिवत विवाहिता स्त्री की यातना का साक्ष्य बनकर सामने आता है. एक संस्था के रूप में विवाह के इस निषेध के पीछे उच्छृंखल और एकांगी नकार की वास्तविकता भी उभर कर सामने आती है. पारिवारिक विघटन के प्रभावों को निर्मल वर्मा अपनी अनेक कहानियों में अंकित कर रहे हैं. उनके उपन्यास में एक संस्था के रूप में विवाह के नकार को कोई जेहादी उत्साह नहीं है. इस विघटन और बिखराव को उन्होंने अपेक्षाकृत गहरी संवेदना के साथ अंकित किया है.

निर्मल वर्मा

मोहन राकेश की तरह निर्मल वर्मा भी उपन्यास की ओर

काफी देर से आए. 'वे दिन' (1964) में वे अपनी यूरोपीय प्रवास की इसी पृष्ठभूमि का रचनात्मक उपयोग करते हैं. चेकोस्लाविया की पृष्ठभूमि में कुछ प्रवासी यूरोपीय पात्रों को लेकर उन्होंने युद्धोत्तर यूरोप की मानसिकता को अंकित किया है. पति से विच्छेद के बाद रायना अपने पुत्र मीता के साथ चेकोस्लोवाकिया में है. भारतीय युवक 'मैं' उसके लिए दुभाषिए का काम करता है और कुछ दिन का यह संपर्क ही उपन्यास की रचनावस्तु के रूप में विकसित होता है. अपनी कहानियों की तरह यहां भी निर्मल वर्मा परिवेश को एक जीवंत पात्र की तरह प्रस्तुत करते हैं. युद्ध के बाद की हताशा और अवसाद रायना में मूर्त होते दिखाई देते हैं. उससे बेहतर शायद इसे और कोई नहीं जानता कि लड़ाई में बचपन नहीं गुजारना चाहिए... क्योंकि फिर वह जिंदगी भर पीछा नहीं छोड़ती. रायना के बिखराव और अवसाद को निर्मल वर्मा गहरी संवेदनशीलता के प्रकाशित हुए—'लाल टीन की छत' (1974) 'एक चिथड़ा सुख' (1979) और 'रात का रिपोर्टर' (1989)

'लाल टीन की छत', शिमला की पृष्ठभूमि में, काया नामक एक बच्ची के किशोरी बनने की कथा है. निर्मल वर्मा ने वयःसंधि की गोपनीयता और रहस्यलोक को गहरी तल्लीनता के साथ अंकित किया है. उसके बारे में अपने एक साक्षात्कार में उनकी आत्मस्वीकृति है. 'काया मेरे लिए एक रूपकात्मक अभिव्यक्ति रही है, बचपन के उन वर्षों के बदहवास और विक्षिप्त किस्म के अकेलेपन की जो हम हर बरस शिमला में बिताते थे...' (निर्मल वर्मा, सं. अशोक वाजपेयी, पं. 48) यह उपन्यास व्यथा के जीवन के उस बहते समय को उन पहाड़ों की तरह ठोस और मूर्त रूप देना चाहता है जो रचना की पृष्ठभूमि में सब कहीं मौजूद है. 'एक चिथड़ा सुख' के प्रसंग में कुंवर नारायण ने निर्मल वर्मा के गद्य को खरगोश की खाल की तरह कोमल और संवेदनशील बताकर उसकी प्रशंसा की है. निर्मल वर्मा के गद्य की यह विशिष्ट प्रकृति ही वस्तुतः उन्हें अनेक प्रकार के आरोपों के बीच खड़ा करती है. उनका गद्य और उसी के अनुरूप निर्मित उनके उपन्यासों की रचना वस्तु सामान्य वास्तविकता के बहिष्कार का प्रभाव छोड़ते हैं. इस अर्थ में उनका 'रात का रिपोर्टर' एक भिन्न प्रकृति की रचना लग सकता है. 'रात का रिपोर्टर' उनका अकेला उपन्यास है जिसमें वे निकट अतीत के एक विशिष्ट काल-खण्ड-इमरजेंसी-को पृष्ठभूमि के रूप में इस्तेमाल करते हैं. यह रिशी नामक एक मध्य वयस पत्रकार को केंद्र में रखकर लिखा गया है. लेखक उसके द्वारा भोगे गए आतंक को मानव-नियति के संकट के रूप में देखे जाने पर बल देता है. एक अनाम और

अपरिभाषित दहशत पूरे उपन्यास पर छाई है. यह आतंक, निर्मल वर्मा के यहां इस बार आपवादिक रूप में, किंचित ठोस संदर्भों से निसृत आतंक है. आपत्काल के संकेत बहुत अस्पष्ट हैं—एक आभास के रूप में ही उन्हें देखा जा सकता है. रिशी के संदर्भ में उसके बस्तर से लौटने और वहां के अनुभवों पर कुछ लिखने का उल्लेख उपन्यास में होता रहा है. उसके बाबा और पत्नी के प्रसंग में छूटी जगहों को निर्मल वर्मा भरने की कोई कोशिश नहीं करते. निर्मल वर्मा पिछले काफी समय से सत्ता की निरंकुशता के विरुद्ध लिखते रहे हैं. कम्प्यूनिज्म से उनके मोहभंग का मूल कारण ही हंगरी और चेकोस्लोवाकिया में सोवियत संघ का सैनिक हस्तक्षेप रहा है. लेकिन भारतीय संदर्भों में यहां उसकी पूरी छूट होने पर भी वे उसका कोई सार्थक उपयोग नहीं करते.

जगदम्बा प्रसाद दीक्षित

आदमी के इसी अकेलेपन की त्रासदी को जगदम्बा प्रसाद दीक्षित महानगर के संदर्भ में, 'कटा हुआ आसमान' (1971) में अंकित करते हैं. इस अंकन में वस्तुपरकता भी है और परिचित यथार्थ के प्रति आत्मीयता की प्रतीति भी. गोविंद मिश्र के 'वह अपना चेहरा' की भांति अलग से भूमिका लिखकर लेखक को अपने परिवेश की बात नहीं करती होती. रमेश नौटियाल एक पहाड़ी अंचल से बम्बई आया है. उसकी विक्षिप्त करने वाली हताशा के दौर में उसी के कॉलेज की एक छात्रा किटी खोसला उसके संपर्क में आती है. रमेश नौटियाल के साथ उसका समूचा परिवेश उपस्थित है. शौकत और उसकी ढांचा बनी पत्नी, चेरियन जो अपनी मां और प्रेमिका को छोड़ने की पीड़ा भोग रहा है, मथायस जो बारह साल से अपने घर गोवा नहीं जा सका है. बम्बई के इस परिवेश के साथ ही स्मृतियों और खण्ड चित्रों के द्वारा रमेश के पहाड़ी अंचल का अपना परिवेश भी इसमें मौजूद है—बूढ़ी मां, शादी लायक बहन रन्नो और छोटे भाई वाला छूटा हुआ परिवार. यह चेतना प्रवाह शैली में लिखा गया उपन्यास है—लेकिन उसकी शिल्पगत एकांगिता से काफी बचाता हुआ क्योंकि यहां व्यक्ति अपने परिवेश से कटकर नहीं, उसके बीच उसकी सारी थरथराहट के साथ अंकित है. व्यक्ति को उसके समूचे परिवेश के बीच अंकित करने का यही कौशल उनके 'मुरदाघर' (1974) को भी एक उल्लेखनीय रचना बनाता है. बम्बई में ही कचरे का ढेर, बदबू, नल पर इकट्ठी भीड़, खजैली कुतिया और सुअर के पिल्लों वाले इस माहौल में लेखक लालबत्ती क्षेत्र की कहानी कहता है—खास बम्बईया हिन्दी में. नूरुन, वशीरन, नैना

लेखकों से विनम्र निवेदन

प्राची के प्रत्येक अंक में लेखकों के लिए रचना भेजने-संबंधी निर्देश दिए जाते हैं, इसके बावजूद लेखक निर्देशों का पालन नहीं करते हैं. कृपया रचना भेजते समय निम्न बातों का ध्यान रखेंगे तो हमें उन पर विचार करने में सुविधा होगी:-

1. रचना कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया छोड़कर साफ लिपि में लिखी हुई हो या टाइप की हुई हो. पंक्तियों के बीच में भी पर्याप्त स्थान छोड़ें तो संपादन में सुविधा होगी.
2. फोटो प्रतिलिपि पर कोई विचार नहीं किया जाएगा.
3. ईमेल से रचना भेजते समय कृपया उसमें आवश्यक सुधार कर लें. रचना केवल कृतिदेव 010 या कुंडली फॉन्ट में ही भेजें, अन्यथा उस पर विचार नहीं किया जाएगा.
4. कृपया पूर्व प्रकाशित रचना न भेजें.
5. रचना की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रख लें, क्योंकि रचना वापस करने का कोई प्रावधान नहीं है.
6. आपका सहयोग हमारे लिए महत्वपूर्ण है. इसे बनाए रखें.

—सम्पादक

और मंगला आदि औरतें इसी खारिज और कोढ़ भरे माहौल में जिंदा रहने को अभिशप्त हैं. यही जीवित लोगों का मुरदाघर है, अपने ठेठ प्रकृतवादी अंदाज में. यहां सिर्फ वेश्याएं ही नहीं हैं, वह पूरी दुनिया है जो कोढ़ियों, अपाहिजों, भीख मांगने वालों और कूड़े के ढेर से काम लायक चीजें ढूंढ़कर अपनी रोटी खाने वालों से बनती है. तस्करों और रंडियों की इस दुनिया में आमद का रास्ता पूरी तरह खुला है—वापसी अलबत्ता असंभव है.

(शेष अगले अंक में)



□□

पहचान

नीलकान्त

अब धीरे-धीरे हवा तेज चलने लगी थी. बूंदों की गड़गड़ बारिश में सनसनाहट का रव निरन्तर सुनाई पड़ रहा था, जिससे सुबकती हुई रात का सन्नाटा सघन होता जा रहा था. मानवीय आवाजों के बन्द हो जाने पर सन्नाटा ही तो रह जाता है.

मद्रासी होटल में पहुंचते-पहुंचते अतुल आधा भीग चुका था. फाटक खोल कर, वह तेजी से अन्दर आया था. सहसा उसकी नजर सामने काउंटर के ऊपर नीले बल्ब पर पड़ी. तब वह हताश हो गया था, और दरवाजे के पास ही दाएं कोने में टेबल के पीछे कुर्सी पर बैठ गया था. कुहनियां टेबिल पर टेक, वह सामने काउंटर को विस्फारित आंखों से ताक रहा था. भोजन उठ जाने के बाद, जब बेयरे भोजन कर लेते हैं, और मैनेजर सोने चला जाता, तो हॉल के शेष सारे बल्ब बुझा दिए जाते हैं. और वह नीला बल्ब जलता रहता है. बल्ब के ऊपर गोल शेड लगा हुआ था. हॉल के बीच तक पहुंच कर, नीली रोशनी आसमान के एक वृत्त की तरह टूट गई है, और उसका हाशिया अंधेरे से धुल गया है. अंधेरा चारों कोनों में अधिक गाढ़ा हो गया था. फर्श पर फर्नीचरों की आकृतियां सपाट, धब्बों की तरह बिगड़ी हुई प्रतीत हो रही थी.

काउंटर के बगल में ही रसोई-घर था. उसके दरवाजे पर एक मटियाला पर्दा लटक रहा था, जिसमें तीन-चार छेद बन गये थे. छेदों में अन्दर की पीली रोशनी गेंदे के फूलों की तरह अटकी हुई थी. रसोईघर को एकटक देखते रहने से उसकी भूख कई गुना बढ़ गई. उसके जी में आया, कि वह मगन का नाम लेकर चीख उठे. तभी उसे मगन दिखाई पड़ा. पर्दे के एक ओर से उसकी गर्दन बाहर निकल कर रुक गयी थी. वह हॉल में पता नहीं क्या देख रहा था. पर्दे पर उसकी गर्दन. अतुल ने उस ओर एकटक देखते हुए टेबिल पर कई बार दस्तकें दीं. मगन निकल कर हॉल में आया, फिर नीली रोशनी में तैरता हुआ, एक पल के लिये अंधेरे भाग में धब्बे की तरह उड़ता हुआ, अतुल के निकट आकर रुका. अतुल उसे 'हंसता हुआ' लड़का समझता था. लेकिन आज उसकी आवाज भारी थी.

उसने धीरे से पूछा-‘सा’ ब, आज देर कर आया?”

“हां!” ठहर कर अतुल ने सोचा, फिर बोला- “देर हो जाती है! कुछ खाने को मिलेगा, मगन?”

“सा’ब, देख कर बतलाता है,” कह कर, वह काउंटर की ओर मुड़ा, और नीली रोशनी में दिखलाई दिया।

‘सिवा मगन के कोई नहीं जानता कि मैं यहां हूं,’ उसने सोचा। इस होटल में सभी दक्षिणी लोग थे। यद्यपि मगन भी बेयरा था, लेकिन मैनेजर एवं बेयरों के बीच वह अपरिचित था। बारह-तेरह वर्ष की उम्र थी। लोना-पोना-सा, गोरा-चिट्ठा पहाड़ी लड़का था वह। किसी चीज को ठीक-ठीक न समझती हुई उसकी आंखें थीं। दूध पीते बच्चे से उसके होंठ लाल थे। रोज की तरह उसने वही नीला हाफपैट और बनियान पहन रखी थी। फिर भी वह सुबह के फूल की तरह ताजा खिला लगता था। अतुल ने पहले दिन जब उससे चाय मांगी थी, तब वह घबरा गया था। ‘साहब’ के बदले वह ‘सा’ब’ कहता था, और संकोच में बोलने का आदी होता जा रहा था। जब अतुल ने उसे आठ आने का भारी टिप दिया, तो “नहीं, नहीं” कहते हुए, वह कई कदम पीछे हट गया था। वह तमाशा देख कर, दो-एक बेयरे हंसने लगे थे। तब से अक्सर अतुल और मगन को देख कर, वह हंसा करते थे, यद्यपि मगन ने उस दिन पैसा लेने ने इन्कार कर दिया था, और अतुल ने दुबारा उसे पैसा कभी नहीं दिया।

अतुल रोज इस होटल में आया करता था। सुबह का नाश्ता और शाम का भोजन इसी होटल में करता था। अन्य होटलों की अपेक्षा यह सस्ता भी पड़ता था। नाश्ते में कभी इडली और सांभर, कभी डोसा और चटनी और एक कप चाय पर्याप्त मात्रा में थोड़े पैसों में प्राप्त हो जाते थे। कभी-कभी अतुल ऐसे मौके पर भी यहां पहुंचा है, जब कि हॉल में सिर्फ नीला बल्ब जलता दिखा है। तब उसने डबल रोटी और चास से ही काम चलाया है। देर से आने पर यही मिल सकता था।

“सा’ब, यही बिल सकता है,” टेबिल पर प्लेटें सजा कर, मगन बोला- “भोजन उठ गया, सा’ब। यह पानी है, सा’ब, यह चाय, यह रोटी, सा’ब।”

अतुल ने मुंह से डबल रोटी हटा कर, चुपचाप मगन को देखा। तभी बाहर बिजली चमकी होगी। रोशनदानों और खिड़कियों के कांचों पर पीले रोशनी के टुकड़े बुझते हुए नजर आए। पीछे दूर से उठती हुई गड़गड़ाहट सिमट कर उन दोनों के बहुत पास टूटकर बिखरने लगती है। टिन की छतें और शीशे झन-झन खनकते जाते हैं। खाली दायरों में फिर सन्नाटा भर उठता है।

“सा’ब!”

अतुल ने सुना। तब तक वह मगन को एकटक देख रहा था। रोशनी की कोई किरण बीच से उसके चेहरे को चीर गयी थी। गुलाब की पंखुरी-से उसके दोनों होंठ फड़क रहे थे। इन क्षणों के



पीछे बहुत दूर कर झम-झम की आवाज सुनायी पड़ रही थी।

“मगन, इतना बहुत है। अब तुम जाकर आराम करो।”

“सा’ब, अभी तो हमको बहुत काम करता है,” यह कह कर, वह ठिठका। फिर धीरे से बोला- “सा’ब, हम यहीं पर सोयेगा।” अतुल की कुर्सी बगल में खाली फर्श को दिखा कर, मगन पीछे मुड़ गया।

“अप्फा. . .”

अतुल के मुंह में कौर आ गया था। उस दशा में सहसा बोल पड़ने के कारण उसकी आवाज बड़ी भद्दी मालूम पड़ी।

किन्तु मगन तब तक चला गया था। तब वह बहुत देर तक अपने गलत उच्चारण के विषय में सोचता रहा।

डबल रोटी और चाय खत्म करने के बाद, अतुल सामने की टेबिल पर कुहनियां टेक कर, हथेलियों में अपना चेहरा लेकर, बैठा सोचता रहा। हॉल में इधर-उधर देख कर, वह अपनी आंखें बन्द कर लेता। तब बहुत सूना लगता। कभी-कभी वह ऊंघता, फिर हथेलियों से भौंहों को मल कर, रसोईघर के पर्दे पर दृष्टि गड़ा देता। तो क्या रसोईघर में मगन ही खट-खुट कर रहा है? रात के दस बज रहे हैं। काउंटर के पास ही बेयरे सोये हुए हैं।

उनमें से किसी ने जम्हाई ली.

एकाएक एक भयंकर आवाज सुनाई पड़ी-“मगों-न!”

अतुल उलझन में पड़ गया. सम्भवतः मैनेजर ने उसे पिछले कमरे से बुलाया हो. या हो सकता है कि अभी तक कोई दूसरा बेयरा जग रहा हो. शायद वह आवाज फिर सुनाई पड़े. संयोग से वह एक डबल रोटी और चाय ले चुका है. हो सकता है, कि यहां पर कोई सोच रहा हो कि अतुल चला गया होगा. लेकिन पानी अभी तक बरस रहा था. हो सकता है कि मगन रसोईघर में हो. नहीं, हो सकता है कि वह वहीं सो गया हो. हो सकता है कि जहां वह सो गया हो वहां प्लेटें बिखरी हों और खाली प्याले, चम्मच और कांटे. और उन्हीं पर वह सो रहा हो. नहीं-नहीं, वह है. खट्क-खट्क की आवाज होती है.

एकाएक मैं मगन के बारे में क्यों सोचने लगा, अतुल ने सचेत होकर, अपने मन को परखा. सचमुच बहुत देर से उसके मन के कोनों में मगन विभिन्न रूपों में उत्पन्न हो रहा था. कभी वह तितली पकड़ता हुआ दिखाई देता, कभी मैदानों में फुटबाल खेलते हुए, कभी झाड़ियों में खरगोश फंसाते हुए, कभी कॉलेज जाते हुए- यद्यपि उसने मगन को इनमें से किसी रूप में नहीं देखा था. सम्भवतः वह ऊँघ रहा था. आंखें खोल कर, उसने ध्यान से सुना. पानी अभी थम नहीं रहा था. यहां से उसका कमरा कोई आध-मील दूर था. यदि उसके पास घर होता, बीवी-बच्चे होते और अच्छी नौकरी होती तो वह मगन को जरूर यहां से निकाल ले जाता. मगन यहां खुश नहीं हैं. अक्सर उसने यहां न रहने की इच्छा प्रकट की है. कहा करता है- “सा’ब, सब काम हम करता है.”

अतुल ने स्वयं उसे काम में व्यस्त देखा था- कभी पोर्टिको के सामने कारियों में पानी देते हुए, कभी गमले उठा कर छाया में, छाया से धूप में रखते हुए, वैजयन्ती में खाद डालते हुए, मेंहदी की झाड़ी काटते-छांटते हुए, हॉल के लोगों की सेवा करते हुए. उसकी औकात कितनी है और उसका काम कितना है.

रसोईघर का पर्दा उसे विचित्र मालूम पड़ रहा था. उसके निचले छोर से एक लहर उठ कर ऊपर की ओर दौड़ गई, फिर उसके सारे छेदों से रोशनी गायब हो गई. दूसरे ही क्षण मगन दरवाजे से निकल कर बाहर आ गया. बगल में उसने चटाई का बंडल लपेटकर दबा रखा है. उसकी उम्र और उसकी थकान में बड़ा अन्तर है. जब सभी लोग सो गये हों, तब एक लड़का काम में फुर्सत पा कर सोने जाय. लेकिन तिस पर भी वह हंस लेता है, फुदक लेता है, जीवित लगता है. किसी बेयरे ने उसे टोंका, लेकिन न तो वह ठिठका और न उसने कोई उत्तर दिया.

कुर्सियों-टेबिलों की भीड़ में इधर-उधर से निकल कर, अतुल के समीप आ कर खड़ा हुआ. चटाई बिछाते हुए उसने पूछा- “सा’ब, घर नहीं जाएगा?”

“जाना चाहता हूं, मगन.”

एक पल अतुल ने घर का अर्थ सोचते हुए बिता दिया. घर का मतलब-किराए का एक कमरा.

“मगन, अभी पानी बरस रहा है?”

“हां, सा’ब.” वह तनतनाया हुआ दरवाजे की ओर गया, फिर नन्हें-नन्हें पैरों की आवाज लौट आयी. ‘बौत गहरा बरस रहा है.”

फिर चटाई के पास खड़े हो कर, उसने संकोच से पूछा- “सा’ब, वे लोग बोलता है, कि फाटक बन्द कर दो.”

“बन्द कर दो न,” अतुल ने तनिक चौंक कर कहा.

“सा’ब, तुम सो रहा है?” कह कर, मगन दरवाजा बन्द करने चला गया.

अतुल ने दरवाजे का धड़ाम-से बन्द होना और सितकिनी से लगना सुना. लेकिन वे आवाजें बहुत मन्द सुनाई पड़ीं. वह झूल-झूल कर आगे टेबिल पर गिरने लगा था. लड़खड़ा कर गिरते समय वह टेबिल की सपाट सतह को पंजों से पकड़ने का प्रयत्न करता. मगन वहीं खड़े होकर, ये देख-देख मुस्कराने लगा था. अतुल ने उसे अपनी ओर हंसते देखा तो उसे अनुभव हुआ कि वह कई घाटियां फांद कर, एक ऊंची ढलुआ पहाड़ी पर जा खड़ा हुआ है, जहां से नीला खुला आसमान, जंगलों के घने हरे धब्बे, फूलों से भरी घाटियां और चट्टानों को डांकते हुए सोते दिखाई दे रहे हैं.

“सा’ब, सो रहा है?”

“नहीं, मगन,” वह सचेत होकर कहता है.

“तुम सोओ, मगन. तुम आराम करो.”

मगन रबर के बबुए की तरह आकर, चटाई पर बैठ गया, फिर फर्श पर बुक्की बांध कर कुछ सोचने लगा.

अतुल अब निश्चित होकर, टेबिल पर सिर रख कर सोना चाहता था.

‘मगन सो गया,’ उसने सोचा, ‘अब मैं भी सो जाऊं. तीन-चार घंटे रात और है. खत्म हो जाएगी. इस बार आंखें मुंदने लगी, तो फिर मगन की आवाज सुनाई पड़ी. लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया.

“सा’ब, तुम्हारा घर कहां है?”

अतुल के कानों में बार-बार यह आवाज ‘घर’ पूछ रही थी. लेकिन किसकी आवाज थी, यह पहचान पाना कठिन था. कभी

यह आवाज मगन की होती, कभी स्वयं अतुल की होती, कभी स्टेशन के किसी सहयात्री की. 'सा'ब, -सा'ब, घर कहां है? आप का घर कहां है? अतुल, तुम्हारा घर कहां है? मेरा, मेरा घर? कहां? कहां है? मेरा घर कहां है?"

उसे अपना अस्तित्व एक अंधेरी गुफा की तरह रिक्त दिखाई दे रहा था, जिसके एक ओर से प्रश्न-भरी ऐसी आवाजों की एक बेतरतीब श्रृंखला चीखती हुई दूसरे सिरे तक गुजर जाती थी.

"सा'ब, सो गया? सुनता नहीं, सा'ब?"

बीच में उसे एक बार ऐसा लगा कि वह अपने सिर को हथेली में लेकर देख रहा है और सभी लोग उसे इस तरह देख कर डर गये हैं और हाल छोड़ कर भागे जा रहे हैं. ...कबन्ध ...कबन्ध...वह कबन्ध. चौंक कर, उसने आंखें खोल दीं.

बारिश पतली हो गई थी. कहीं टिन पर झांझ-सा बज रहा था. फिर उसने अपने दायीं ओर देखा और काफी नीचे झुक कर, चटाई पर पेट के बल लेटे हुए मगन को देखने लगा. मगन हथेली पर अपनी टुड्डी लिए हुए, तिरछी, उनींदी आंखों से अतुल को ताक रहा था. कभी-कभी उसकी मुस्कराहट कम होती, कभी-कभी पूरे चेहरे पर फैल जाती. एकाएक उसे लगा कि समय नहीं रह गया है और सन्नाटा होता जा रहा है. तभी उसे अपनी हथेलियों के नीचे मगन के घुंघराले बालों का अनुभव हुआ.

"तुमने क्या पूछा, मगन?"

"घर पूछता था."

"घर?" यह कह कर अतुल सीधा कुर्सी पर बैठ गया. अब उसे नींद नहीं आ रही थी.

"घर पूछ कर क्या करोगे मगन?"

"सा'ब तुम्हारे घर चलेगा."

मगन दूसरे-तीसरे दिन अकसर अतुल से कहता था, कि वह उसके घर चलेगा. लेकिन उसका घर शहर में नहीं है. घर होता तो वह इस तरह यहां क्यों होता? धीरे-धीरे उसे भूख सताने लगी थी. लेकिन वह अपने बारे में सोचता रहा. क्यों वह दुबला-पतला है? और उसकी आंखें पीली क्यों हैं? क्योंकि ठीक समय पर उसे उचित भोजन नहीं मिलता. वह क्या करता है कि उसे ठीक समय पर भोजन नहीं मिलता? कुछ नहीं. एम. ए. करने के बाद, तीन साल बाद बेरोजगार रह कर, अब वह एक बुक कम्पनी में एजेन्ट है. मुश्किल से उसे सौ रुपए मिलते हैं. क्या एक क्वारे, नौजवान व्यक्ति के लिये सौ रुपए काफी हैं? यदि वह शादी कहना चाहे, तो-तो? 'ओह'! मन-ही-मन वह चीख पड़ा, बन्द करो. सोचना बन्द करो, अतुल. वही बात, वही शब्द. रोज वह मन में लम्बी-लम्बी उड़ानें भरता, और फिर अपने को एक ही स्थान पर

टुके हुए पाने की विवशता. 'अतुल, तुम उल्लू हो. बन्द करो सोचना. वही शब्द, वही बात. नीरस पुनरावृत्ति. क्यों तुम जीने के बारे में सोचते हो, और मरने के बारे में नहीं सोचते? तुम क्यों आवश्यक चीजों के बारे में सोचते हो और अनावश्यक चीजों के बारे में नहीं सोचते? अतुल, तुम बहिष्कृत हो फिर भी देश को अपना देश, समाज को अपना समाज, घर को अपना घर मानते हो? लगा दो आ-ग, लगा दो!"

"सा'ब, तुम दोनों टैम भोजन करने को नहीं आता, क्यों?"

"मगन, तुम सो क्यों नहीं जाते!"

सहसा भारी-भरकम पदचाप सुन कर, अतुल सजग हो उठा. मगन चुप ही नहीं हुआ, सुन्न होकर सो गया. काउंटर की ओर से कोई इधर ही आ रहा है. वह कौन हो सकता है? अतुल ठीक-ठीक पहचान नहीं पा रहा था. वह व्यक्ति अत्यन्त काला लग रहा था. बहुत निकट आकर जब वह रुका और बोलने के लिये उसने मुंह खोला तो उसके दांत ही चमके. लेकिन उसके खड़े होने के ढंग से और सांसों की गति से लगता था कि वह हिंसा से भरपूर होकर खड़ा है. अतुल ने जवाब देने के लिये मुट्ठियां बांध ली थीं. वह इन्तजार कर रहा था.

"क्या है?" अतुल ने पूछा.

"तुम घर जाने को नहीं सकता?" उस व्यक्ति ने पूछा फिर पानी का बरसना सुन कर बोला "बादल नहीं रुकने को सकता!"

अतुल ने उत्तर न देकर अपनी मुट्ठियों को और अधिक कड़ाई से बांध लिया. उस काले व्यक्ति ने कुछ सूंघते हुए, उसके दायीं ओर देखा और फिर पेड़ की तरह झुक कर मगन को परखने लगा. उस व्यक्ति ने मगन के पैरों को पकड़ कर इधर-उधर हिलाया. अतुल ने सोचा, 'क्या यही ठीक अवसर है?"

"सो गया, सो गया है?"

मगन न सुगबुगया तो वह बड़ी मुश्किल से वापस जाने लगा. नीली रोशनी के टुकड़े में उसकी काली परछाई उभर कर काउंटर को छूती हुई दिखायी पड़ी. जाते-जाते वह रुक गया और फिर रुकता-रुकता चलने लगा. रसोई-घर का पर्दा हटा कर, वह व्यक्ति अन्दर चला गया. कुछ देर बाद उधर से खट के चरमराने की आवाज और जानवर की कराह सुनाई पड़ी.

कुछ देर तक अतुल सुन्न-सा बैठा रहा. उसका दिमाग खाली हो गया था. तभी मगन ने अपना नन्हा हाथ उसके दाहिने पैर पर रख दिया. अतुल चौंकते हुए, फिसल कर कुर्सी से नीचे आया और मगन के सिरहाने बैठ गया.

"क्या कहता था, सा'ब?"

"वह हमको जाने को कहता था."

“सा’ब वह हमको देख रहा था.”

अतुल की गर्दन एकाएक धड़ में घुस गई. उसके हाथ-पांव छोटे हो गये और वह बौनी मूर्ति की तरह मगन के सिरहाने बैठा रह गया. मगन उसके दाहिने अंगूठे को कोई वस्तु समझ कर नोचने लगा था. उसे हिचकी आने लगी थी. अतुल को झूठ नहीं बोलना चाहिए था. उसे बतलाना चाहिए था, कि ‘हां, मगन, वह आदमी तुम्हें देख रहा था, छू रहा था, पूछ रहा था.’

“लेकिन तू क्यों रोता है? मगन, रो मत!”

अतुल ने अपने को इतना लघु और बौना कभी नहीं जाना था, क्योंकि वह सत्य कहने से चूक गया था.

“सा’ब, वो मैनेजर था. वो हमको देख रहा था.”

अपनी टूटी-फूटी, सहज भाषा में उसने बतलाया, कि “सा’ब, सारा काम करने के बाद रोज उसका पैर दबाता हूं. उसके पैर की एड़ी में दर्द रहता है. घंटों दबाता हूं, सा’ब. वह सो जाता है और मैं दबाता रहता हूं सा’ब!”

“जिस दिन भूल जाता हूं और उसके कमरे में नहीं जाता तो वह मुझे खोज कर जगाता है और अपने कमरे में उठा ले जाता है. सा’ब, वह हमको दांत से काट लेता है. सा’ब, नंगा होकर डराता है. मैं रोता हूं, सा’ब, लेकिन वह मुझे रोने नहीं देता. मुंह में अंगूठा डाल देता है. सा’ब हमको इस होटल में रहना पसंद नहीं है. आदमी लोग हमको सताता है.

हमको अपने घर ले चलो. ... सा’ब, मुझको रात भर नींद

नहीं आता.”

मगन धीरे-धीरे सिसक रहा था. वह खुला नीला आसमान, जंगलों के हरे धब्बे, घाटियों के फूल और चट्टानें डांकते सोते क्या हुए? सारा दृश्य एक धमाके की चोट खाकर फट गया और उसके टुकड़े बिखर कर उड़ रहे हैं. धुएं के जंगलों में मगन नंगा भागा जा रहा था. “सा’ब” अतुल उसके सिर को गोद में लेकर, उसके चेहरे पर हाथ फिरा रहा था. हथेली के नीचे उसके गर्म आंसू बह रहे थे. मुंह पर भाप उड़ रही थी. लार बह कर उसके होंठों को गीला कर गयी थी।

“सा’ब, हम अपने मां-बाप के पास जाना चाहते हैं.” उसने शान्त होकर, एक लम्बी सांस ली.

“चुप रहो, मगन. अभी रात बहुत है.”

अतुल ने चारों कोनों में देखा. छतों से लेकर फर्श तक अंधेरे कोनों में लम्बी-लम्बी जटाएं फैली हुई हैं. मगन की बगल में लेटते हुए, अतुल ने कहा- “अभी रात बहुत है, मगन. सो जाओ.”

उसकी थपकियों से मगन को राहत तो मिल रही थी, लेकिन उसके प्रश्नों के उत्तर में वह क्या कहे? मगन उसकी गोद में अपने मेमनेनुमा अस्तित्व को छुपाता जा रहा था. लेकिन उत्तर? अतुल की समझ में नहीं आया.

“मगन!” बीच में अतुल ने एक बार बुलाया और अपनी गोद में मगन को छुपा कर चुप रह गया.

(साभार: माया, समकालीन कहानी विशेषांक, 1961)

□□

लघुकथा

नेताजी की चतुराई

आनन्द कुमार तिवारी

वोट बटोरने के लिए सत्तारूढ़ पार्टी के एक वरिष्ठ नेता ने एक गांव के अति दलित व्यक्ति के यहां भोजन किया. टी.वी. चैनलों ने इस घटना का जीवन्त प्रसारण किया. पार्टी द्वारा भी नेता जी की अत्यंत प्रशंसा की गई. नेता जी अपनी योजना की सफलता से गद्गद् थे.

शाम को जब नेता जी अपने घर पहुंचे तो उनकी पत्नी ने उन्हें दरवाजे पर ही रोक कर उन पर गंगा जल का छिड़काव किया. नेता जी मुस्कुरा कर बोले, “अरे भागवान! जैसा तुम समझ रही हो, वैसा बिल्कुल भी नहीं है. मैंने दलित के घर भोजन अवश्य किया था है किन्तु वह न तो दलित के द्वारा बनाया गया था और न ही दलित के द्वारा परोसा गया.”

नेता पत्नी ने पूछा- “यह कैसी पहेली है? जरा स्पष्ट कीजिये.” नेता जी ने आराम से सोफे पर पसरते हुए कहा- “अपनी पार्टी दफ्तर का रामू महाराज पूरा खाना बनाकर डिब्बों में भरकर ले गया था. खाना भी महाराज की पत्नी द्वारा ही परोसा गया था. चूंकि वह लंबे घूंघट में थी इसलिए लोग उसे दलित की पत्नी समझ रहे थे, जबकि उसकी पत्नी तो अंदर कमरे में दुबकी हुई थी और वह दलित भी मुझसे चार फुट दूर हाथ बांधे हुए खड़ा था.”

नेता जी की चतुराई से प्रसन्न होकर नेता पत्नी ने उनके गले में अपनी बांहों का हार डाल दिया. प्रसन्नता से नेता जी भी खिलखिला पड़े.

सम्पर्क: तुलसी धाम 36 चंचल कालोनी,
लक्ष्मी नगर के पास, पिपलानी, भोपाल (म.प्र.)

मो: 9827362053

☆

बाहर आने का रास्ता

जाय विलियम्स

मैं जब बहुत छोटी थी, तब एक बार मेरे पिता ने कहा, “लिजी, मैं तुम्हें तुम्हारे दादा के बारे में कुछ बताना चाहता हूँ. जब वे मरे, उससे ठीक पहले वे जिंदा थे. यानी पंद्रह मिनट पहले.”

मैं अपने दादा को नहीं जानती थी. लेकिन फिर भी उनके बारे में इससे अजीबगरीब बात मैंने पहले नहीं सुनी थी.

फिर भी, मैंने कहा, “धत्.”

“धत्?” मेरे पिता ने कहा, “‘धत्’ का क्या मतलब?” वे हंसने लगे.

मैंने अपना सिर हिलाया.

“अच्छा चलो,” मेरे पिता ने कहा, “एक मिनट पहले. मैंने सोचा था कि तुम अभी बहुत छोटी हो, तुम्हारी समझ में नहीं आएगा, लेकिन तुम्हें तो सब मालूम है. अच्छा, एक मिनट से भी कम, बल्कि सिर्फ एक लम्हा, एक सेकेंड पहले...”

“चलो बहुत हुआ, उसे चिढ़ाना बंद करो अब!” मेरी मां ने मेरे पिता से कहा.

“वे तुम्हें चिढ़ा रहे हैं, लिजी!” मेरी मां ने कहा.

गर्मियों में एक बार हम तीनों गाड़ी में पहाड़ी तक गए थे, जहां झील के किनारे एक बंगले जैसा होटल था. दोपहर में जहां भीतर घुड़दौड़ हुआ करती थी. काठ के घोड़े, जिन पर नंबर लिखे होते थे और जिन्हें चोगों वाली औरतें कमरे के इस कोने से उस कोने तक दौड़ाती थी. एक लंबा सा घाट था, जो झील के अंदर तक जाता था. उस घाट के सिरे पर एक नाइट क्लब था जिसकी छत पर बीस-बीस फुट लंबे शॉपन के गिलास बने हुए थे. रात के वक्त कोई बटन दबाता तो उन गिलासों में से निऑन के छोटे-छोटे बुलबुले फूटकर बाहर हवा में गिरने लगते. मुझे अपने घर की छत पर भी इसी तरह के गिलास चाहिए थे और मेरी बातें सुनकर मां हमेशा कहती, “चलो अच्छा, देखेंगे.”

वहां पहाड़ों में एक बार मैंने एक अजीब चीज देखी. मैंने देखा कि मेरे पिता लंगड़े होने का स्वांग कर रहे हैं. यह होटल की तोहफों की दुकान के भीतर बहुत सारे अजनबियों के बीच की बात है. उस दुकान में बाकी सामान के अलावा हाथ के तराशे हुए हथ्यों वाली छड़ियां भी मिलती थीं और एक बार जब मैं वहां अपनी मनपसंद सिगरेट की शक्ल वाली बबल गम लेने गयी तो मैंने अपने पिता को देखा. वे कंधे झुकाकर एक

मद्धम चमक वाली छड़ी पर अपना वजन टिकाए, एक टांग अजीब तरीके से बाहर की तरफ निकाले बेतरह डगमगा रहे थे.

मेरे खूबसूरत, हट्टे-कट्टे पिता. उनका खिंचा हुआ चेहरा न जाने किन सपनों में खोया था. उन्होंने मेरी ओर देखा, और फिर अपना चेहरा घुमा लिया, जैसे वे मुझे पहचानते ही न हों.

मेरी मां को पीने की लत थी. मेरे पिता ने चूंकि हमें छोड़ दिया, इसलिए मैं समझती हूं कि उन्हें यह लत नहीं रही होगी, हालांकि ऐसा नहीं भी हो सकता है.

मेरी मां मुझे प्यार करती थी और हमेशा मेरा बहुत खयाल रखती थी. मेरी मां और मैं, हम दोनों बहुत सारा वक्त साथ गुजारते थे. उस वक्त तक मुझे पढ़ना नहीं आता था. मुझे हमेशा लगता कि पढ़ने में कोई खास चालाकी है, जो मुझे नहीं आती. लिखे हुए शब्द हमेशा मेरे और किसी ऐसी जगह के बीच में होते थे जहां मैं जा नहीं सकती थी. मेरी मां अक्सर उस जगह तक आती-जाती रहती, लेकिन लौटने पर वे मुझे समझा नहीं पाती थी कि वह जगह कैसी है और वहां कैसा लगता है.

अपने बचपन में मेरी मां ने जादूगर हाउडिनी को देखा था. हाउडिनी ने एक हाथी को गायब कर दिया था. उस पेड़ की डालों से चकमदार संतरे लटके हुए थे, जिन्हें वह तोड़-तोड़कर दर्शकों की ओर फेंकता जाता था. लोगों की मर्जी थी कि वे संतरे वहीं खाएं या उन्हें अपने घर ले जाएं.

वह हाथी को कैसे गायब कर देता था, मैंने पूछा.

“वह धुएं के एक रेले में गायब हो जाता था!” मेरी मां ने कहा. “हाउडिनी ने बताया कि हाथी को खुद पता नहीं चलता था कि यह कैसे होता है.”

“वह क्या हाथी का बच्चा था?” मैंने पूछा.

मेरी मां ने अपनी ड्रिंक का घूंट भरा. फिर उन्होंने कहा कि हाउडिनी सिर्फ जादूगर ही नहीं बल्कि एक छूट निकलने वाला कलाकार भी. उन्होंने बताया कि वह हथकड़ियों, जंजीरों और रस्सियों के बीच भी यूं पलक झपकते बाहर आ जाता था.

“उन्होंने उसे जंजीरों में, कवचों में जकड़ा, संदूकों में बंद कर तालाबों, नदियों और समंदरों में फेका, लेकिन वह बाहर आ गया.” मेरी मां ने कहा. मैंने कहा कि मैं हाउडिनी को देखना चाहती हूं.

“हाउडिनी अब कहाँ मिलेगा, लिजी.” मेरी मां ने कहा, “वह तो कब का मर चुका है. एक आदमी ने उसके पेट में तीन घूँसे जमाए और वह मर गया.”

“मर गया? क्या वह मरा हुआ होने से बाहर नहीं आ सकता था,” मैंने पूछा.

“बस यहीं तो वह मात खा गया!” मेरी मां ने कहा.

उन्होंने बताया कि उसने स्टेज पर फूलदान में लगे फूलों को एक टापें भरते टट्टू में बदल दिया था.

“पता है लिजी एक बार उसने एक भली चंगी औरत को आरे से दो टुकड़ों में काट दिया!” ओह, मैं किस कदर चाहती थी कि वह औरत मैं ही होऊं जिसे वह आरे से काटकर फिर दुबारा जोड़ देता था.

मेरी मां खुशी-खुशी हंसते हुए बताती जातीं. हम दोनों रसोईघर की टेबल पर बैठे होते और मेरी मां अपनी हथेली पर टिके छोटे से गिलास में से पी रही होती.

वह मेरा प्रिय गिलास था लेकिन वह कभी मुझे उससे पीने नहीं देती थी. हमारी आल्मारी में कई तरह के गिलास थे, लेकिन यही एक था, जो हम दोनों को पसंद था. यह तब की बात है जब हम मेन में थे. बाहर अहाते में हमारी कार खड़ी होती थी-नीले रंग की कन्वर्टिबल!

“क्या तब खून भी निकला था,” मैंने पूछा.

“अरे नहीं, लिजी! वह आखिर एक जादू का खेल था.”

“क्या वह रोयी थी, वह भली औरत,” मैं जानना चाहती थी.

“नहीं, मुझे नहीं लगता.” मेरी मां ने कहा, “हो सकता उसने पहले उसे हिप्नोटाइज कर लिया हो!”

वह सर्दियों का मौसम था. मेरे पिता कभी उस नीली कन्वर्टिबल में नहीं बैठे थे, जिसे मेरी मां ने उनके जाने के बाद खरीदा था. वह कार पुरानी थी, यहां-वहां से जंग खायी हुई. उसमें मेरी तरफ के रबर मैट के नीचे का एक हिस्सा पूरी तरह सड़ चुका था और वहां एक बड़ा सा छेद बन गया था. हम कार में जब कहीं जाते, तो मैं अक्सर मैट उठाकर नीचे दौड़ती जमीन की ओर देखती और छेद से होकर भीतर आती ठंडी हवा को महसूस करती. मैं कल्पना करती कि वह ठंडक मुझसे कुछ चाह रही है, वैसे ही जैसे लिखे हुए शब्द बोलने की कोशिश करते थे. हवा मुझे कुछ बताना चाहती है, लेकिन मुझे उसकी परवाह नहीं है, मैं कल्पना करती. हमारे घर के बाहर कार बर्फ में खड़ी रहती थी.

एक बार मैंने कार का सपना देखा. हमेशा की तरह मैं और मेरी मां एक दूसरे के प्रति अपने लाचार और बेसमझ प्यार में बंधे अकेले किसी घर की तरफ निकल पड़े. बार-बार हम निकलते लेकिन हमेशा फिर उसी घर तक आ पहुंचते और उसका एक चक्कर लगाकर फिर से निकल पड़ते. चलते-चलते हमारी गाड़ी के भीतर सलेटी बाल उग आए जो धीरे-धीरे बढ़ते गए. मैंने

मां को कभी इस सपने के बारे में नहीं बताया थी. मैं तब बहुत घुन्नी थी. या कहना चाहिए कि मैं अपनी मां जैसी ही थी.

मैं हाउडिनी के बारे में और जानना चाहती थी. “क्या हाउडिनी ने कभी किसी से प्यार किया था,” मैंने पूछा.

“हां, रोजाबेल से!” मेरी मां ने कहा, “वह अपनी पत्नी रोजाबेल को बहुत चाहता था.”

मैं जाकर एक गिलास लेकर आयी और उसमें थोड़ी से जिंजर एल डालकर मैंने उसी तरह घूंट भरने शुरू किए जैसे मैंने अपनी मां को अक्सर करते देखा था. लेकिन फिर भी मैंने अपने भाव छिपा लिए थे. उनके ठीक सामने चुपचाप बैठी मैं यह नाटक करती रही.

लेकिन फिर उसके बाद मुझे जानना था कि हाउडिनी के प्यार में भी क्या कोई जादू था. क्या वह रोजाबेल को गायब कर सकता था. या कि क्या वे दोनों एक साथ गायब हो सकते थे.

“रोजाबेल?” मेरी मां ने कहा, “रोजाबेल के बारे में किसी को कुछ नहीं मालूम, सिवाए इसके कि हाउडिनी उससे प्यार करता था. और उसने कभी उस प्यार को अकेलेपन में बदलने नहीं दिया, क्योंकि ऐसा करना उसके बड़प्पन के खिलाफ होता.”

हम एक साथ खाना खाते और उसके बाद मेरी मां थोड़ा और पीती. फिर वे अखबार में से मुझे चीजें पढ़कर सुनातीं.

“हे भगवान!” वे कहती, “कैसी अजीब कहानी है. एक शिकारी ने ऐसे भालू को गाली मारी जो मुंह में किसी औरत का हैंडबैग लिए जा रहा था.”

ओह, ओह, मुझे रोना आ गया. अखबार की ओर देखते हुए मैंने उसे एक थपड़ लगाया. मुझसे बेखबर मेरी मां आगे पढ़ती गयीं. उस औरत का वह हैंडबैग बहुत साल पहले किसी पिकनिक के दौरान खो गया था. लेकिन उसके अंदर का सारा सामान, उसका बटुआ और पाउडर, उसकी चाबियां, सब कुछ वैसे ही था.

ओह, मैं चिल्लाई. मुझे सब कुछ बहुत भयानक लगा. फिर मुझे अपनी मां के हैंडबैग, जिसे वे हमेशा अपने साथ रखती थी, और उस बेचारे भालू के बारे में सोचते हुए डर भी महसूस हुआ.

मेरी मां ने अखबार के शब्दों से सिर उठाकर मेरी ओर देखा. वे जैसे उस कमरे में लौट आयी थीं, जहां मैं बैठी थी.

“क्या हुआ लिजी?” उन्होंने पूछा.

“बेचारा भालू,” मैंने कहा.

“अरे, भालू को क्या होना था!” मेरी मां ने कहा, “वह भाग गया!”

लेकिन मुझे नहीं लगता कि ऐसा हुआ होगा. उन्होंने खुद ही तो कहा था कि शिकारी ने उसे गोली मारी!

“भालू सचमुच भाग गया.” मेरी मां ने कहा, “देखो, यहां लिखा है!” उन्होंने शब्दों की एक पंक्ति पर अपनी उंगली दौड़ाई, “भालू जंगल में अपने घर की ओर भाग गया.” फिर वे उड़ खड़ी हुई और टेबल के इस ओर आकर उन्होंने मुझे चूम लिया. उनके मुंह में वहीं गंध थी जो हर सुबह बेसिन में पड़े उनके जूटे गिलास में से आती थी. वह गंध आज भी मुझे हिम्मत और छलावे, उम्मीद और छोटे-छोटे झूठों की याद दिलाती है.

मैंने अपनी आंखें बंद कर लीं, ताकि मुझे अपनी मां की आंखें दिखाई न दे. मैंने देखा कि भालू मुंह में हैंडबैग लिए जंगल के बीच से जा रहा है. बीच-बीच में रुककर वह अपने बड़े से पंजे से बैग की छोटी-छोटी चीजों में से कुछ ढूंढ़ने की कोशिश करता.

“लिजी!” मेरी मां ने मुझे आवाज लगायी. मेरी मां को पता नहीं था कि मैं कहां हूं. यह सोचकर कुछ डर सा लगा और मैंने अपनी आंखें खोल दीं.

“रोओ मत लिजी,” मेरी मां ने कहा. उनकी आवाज खुद रुआंसी सी हो उठी थी. देर रात गए रसोइघर में बैठी मेरी मां के साथ अक्सर यही होता था.

मेरी मां फिर से अखबार में लौट गयीं और उसके पन्ने पलटने लगीं. उन्होंने एक ऐसे आदमी का चित्र दिखाया जिसके हाथ में थमे टोपे में से चमकते हुए सितारे छलक रहे थे. वह किसी जादूगर का विज्ञापन था, जिसके शो हमारे घर के नजदीक ही कहीं होने वाले थे. हमने तय किया कि हम उसे देखने जाएंगे.

मेरी मां को पता था कि स्टेज के सामने वाले गलियारे के बिल्कुल पास वाली सबसे अच्छी सीटें कौन सी हैं. उन्होंने कहा कि हो सकता, वहां से हमें खेल में हिस्सा लेने के लिए स्टेज पर आने का न्यौता भी मिल जाए. जादूगर अक्सर श्रोताओं में लोगों को, खास तौर पर बच्चों को अपने शो में शामिल करते थे. हो सकता है वह मुझे एक खरगोश भी दे दे.

मुझे खरगोश चाहिए था.

मैंने अपने दोनों हाथ टेबल पर रखे तो मुझे लगा कि मैं उस खरगोश को देख पा रही हूं. वह सामने से झक्क सफेद था और पीछे से बिल्कुल काला, जैसे कि वह एक नहीं दो खरगोशों का बना हो. ऐसे खरगोश सचमुच होते हैं.

उस वक्त मैंने उस प्यारे से खरगोश को वहां, अपनी आंखों के सामने टेबल पर देखा.

मेरी मां फोन तक गयीं और उन्होंने दो टिकटें बुक करा लीं. इसी के कुछ दिनों बाद हम सचमुच अपनी कार में बैठकर पोर्टलैंड में उस जादूगर का मैटिनी शो देखने जा रहे थे. मुझे मैटिनी शब्द बहुत पसंद आया था. मैटिनी, मैटिनी, मैंने कहा.

गाड़ी में हम दोनों की सीटों के बीच एक उठान सी थी, और मेरी मां वहां अपना छोटा सा गिलासा रक्खा करती थीं। वह गिलास अक्सर पूरा भरा हुआ होता था, और आधे से कम तो कभी नहीं होता था। हम सारे रास्ते बतियाते रहे, और मैंने सोचा कि सामने दूसरी गाड़ियों से गुजरते लोग जरूर हमें काफी दिलचस्पी से देख रहे होंगे। मेरी मां ने मुझे खुशी के बारे में बताया। उन्होंने कहा कि वह खुशी सबसे अच्छी होती है जो अनजाने में ही नामालूम ढंग से पता नहीं कहां से फूट पड़ती है। ठंडक हमेशा की तरह हमसे कुछ कहना चाह रही थी, लेकिन उसकी ओर ध्यान दिए बगैर हम विंडस्क्रीन से छनकर आती धूप की गुनगुनाहट को अपनी जर्द हथेलियों पर महसूस करते रहे।

मेरी मां ने कहा कि हाउडिनी की आंखें काली थीं और उसकी उंगलियों में से फड़फड़ाते हुए सफेद कबूतर निकल आते थे। एक बार बर्फ की सिल्ली से बाहर निकल आया था।

“क्या वह हाउडिनी मेरे पिता जैसा लगता था,” मैंने पूछा।
“क्या उसकी मूँछें थीं?”

“तुम्हारे पिता की मूँछें कहां थीं!” मेरी मां ने हंसते हुए कहा, “ओह, मैं भी अगर तुम्हारे जैसी होती तो कितना अच्छा होता!”

बाद में उन्होंने कहा, “हो सकता वह बर्फ की सिल्ली से निकल न पाया हो, मुझे पक्का याद नहीं है। हो सकता है वह निकलना चाहता हो, पर निकल न पाया हो!”

हम खाने के लिए सड़क के किनारे के एक छोटे से अंधेरे रेस्त्रां में रुके। मेरी मां ने खुद कॉकटेल लिए और मेरे लिए ठंडा मीठा शर्बत मंगवाया। रेस्त्रां बहुत अच्छा नहीं था। उसके भीतर धुएं और सीलन की ऐसी गंध थी जैसे वहां कभी आग लग चुकी हो। और शोर इतना था कि मुझे अपनी मां की आवाज ठीक से सुनाई भी नहीं दे रही थी। मेरी मां शराबखाने में बैठी किसी औरत की तरह ही सुंदर और घबराई हुई लग रही थीं। मेरी ओर झुककर वे बोलीं, “अच्छा बताओ, मैं किसके जैसी लगती हूँ? तुम क्या मुझे याद रखोगी? वे पता नहीं क्या-क्या कहे जा रही थीं। हम बस यूँ ही वहां बैठे रहे और उसके बाद मेरी मां ने किसी से वक्त पूछा और चौंक गयीं। वक्त मेरी मां को हमेशा चौंका देता था। बाहर हरे फर के पेड़ों के जंगल थे जिनकी निचली टहनियां लगभग जमीन को छू रही थीं और जब हम वापस गाड़ी में बैठ रहे थे तो मुझे लगा कि घने जंगल के अंधेरे में, कार पार्क के आगे के बर्फीले टुकड़े के पीछे कोई जा रहा है। शायद यह वही भालू होगा, मैंने सोचा। भाग, भालू भाग। शिकारी अपने बच्चों के साथ खेल रहा है। मेरे पिता की तरह वह उनके खेलने के लिए एक छोटा सा खेल घर बना रहा है। अभी वह शिकारी नहीं है।

लेकिन अपने दिल के भीतर मुझे मालूम था कि भालू जा चुका है और सामने दिखती आकृति दोपहर में झिलमिलाती किसी और चीज की परछाई मात्र है।

मेरी मां ने बहुत तेज गाड़ी चलाई, लेकिन फिर भी जब हम पहुंचे तो शो शुरू हो चुका था। मेरी मां का चेहरा भीगा हुआ था और उनके खूबसूरत ब्लाउज पर एक धब्बा था। वे लेडीज रूम में घुसीं और जब वे लौटकर आयीं तो धब्बा काफी बड़ा हो गया था। लेकिन इसमें ज्यादातर पानी था और वह पहले जैसा नहीं था। टार्च दिखाने वाले ने हमें तसल्ली दी कि अभी तक कुछ खास नहीं हुआ है। उसने कहा कि जादूगर बहुत अच्छा नहीं है, वह बोलता बहुत है, बहुत से लतीफे सुनाता है और ऊब से जब लोगों का ध्यान टूटने लगता है तो अचानक कुछ हो जाता है, कुछ बदल चुका होता है। गेटकीपर मेरी मां की ओर देखकर मुसकराया। शायद उसे मेरी मां अच्छी लगी थी, या शायद वह उन्हें किसी तरह जानता था। वह एक ठिगना अधगंजा सा आदमी था और मुझे वह बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। वह हमें हमारी सीटों की ओर ले गया लेकिन वहां पहले ही से लोग बैठे हुए थे। एक छोटी-मोटी हलचल के बीच उन अजनबियों ने अपनी सीटें बदलीं। मैं और मेरी मां, काफी अपेक्षाओं के साथ बहुत ध्यान से उस जादूगर को देखते रहे। मेरी मां के होंठ खुल हुए थे और उनकी आंखों में चमक थी। मंच पर मेरी उम्र के बच्चों का झुंड था। उनमें से हर एक के हाथ में एक पिंजरा था, जिसमें एक छोटी सी चिड़िया कैद थी। जादूगर बीच-बीच में उन बच्चों को पिंजरा हिलाने के लिए कहता, जिससे पंछियों के पंख फड़फड़ाते और सबको पता चल जाता कि वे सचमुच के जिंदा पक्षी हैं। आखिरकार जब बच्चों ने हामी भरी कि उन्होंने पिंजरे की सलाखों को कसकर पकड़ रखा है तो जादूगर ने पिंजरे पर एक कपड़ा डाला, उसे तेजी से खींचा और वह पिंजरा और पंछी दोनों गायब हो गए। मुझे कुछ आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि शुरू से ही ऐसा कुछ होने की उम्मीद मुझे थी। मुझसे ताली भी नहीं बजायी गई और मैंने देखा कि मेरी मां के हाथ भी उनकी गोद में रखे हुए हैं। इसके बाद जादूगर ने कई और खेल दिखाए लेकिन इनमें से कोई भी मेरी पसंद का नहीं था। कई-कई पहियों और रंगों वाले बक्से और बड़ी-बड़ी चींजे मंच पर लायी जाने लगीं। उनमें पता नहीं कितने दरवाजे बने थे, जिन्हें जादूगर बार-बार खोलता और बंद करता। संगीत के ऊंचे शोर के बीच चींजे आती और चली जातीं। मैं इनसे कुछ चकरा सी गयी और मुझे गर्मी महसूस होने लगी। बगल की सीट पर बैठी मेरी मां भी बार-बार पहलू बदल रही थी। फिर उसके बाद इंटरवल हो गया और हम दुबारा बाहर लॉबी में आ गये।

“यह आदमी हाउडिनी के पैरों की मेल के बराबर भी नहीं

है!” मेरी मां ने कहा.

“आखिर वह दिखाना क्या चाहता है,” मैंने पूछा.

उसने दर्शकों में बैठे एक आदमी से उसकी घड़ी लेकर सबके सामने उसे हथौड़े से चकनाचूर कर दिया था. फिर वह घड़ी ज्यों-की-त्यों उस आदमी के कान के पीछे लटकी पायी गई थी.

“पुरानी यादें भी कभी-कभी कितनी धोखादेह होती है!” मेरी मां ने कहा, “तुम्हें घर चलाना है?”

मैं अभी जाना नहीं चाहती थी. मुझे आखिर तक पूरा खेल देखना था. रंगीन प्रोग्राम को हाथ में लेकर मैं उसके पन्ने उलटने लगी. उन तस्वीरों के नीचे छपे शब्दों पर अपनी आंखें गड़ाते हुए मैं उनमें किए गये सुनहरे वादों की कल्पना करती रही.

“ठीक है. हम दोनों को ही देखना है कि यह आगे कैसा चलता है.” मेरी मां ने कहा, “हमें इसे आखिर तक देखना होगा, है न?”

मैंने सिर हिलाकर हामी भरी.

“तो ठीक है, लिजी,” मेरी मां ने कहा, “लेकिन मुझे कार में से कुछ लेकर आना है. मैं अभी आई.”

मैं लॉबी के एक कोने में खड़ी होकर उनका इंतजार करने लगी. कुछ बच्चों ने मेरी ओर देखा तो मैंने भी पलटकर उन्हें घूरना शुरू कर दिया. अपनी जेब में पड़े च्यूइंग गम वाली सिगरेटों के पैकेट में से एक सिगरेट निकालकर मैंने उसे अपने होंठों से लगाया. अपने दाहिने हाथ की कुहनी को अपने बायें हाथ से पकड़े हुए मैंने देर तक उस सिगरेट के कश खींचे, फिर उसे अपने मुंह में समेटकर मैं कुछ देर उसे चबाती रही. खेल के दुबारा शुरू होने तक भी मेरी मां वापस नहीं आयी थीं. मुझे पता था कि वे एक छोटी सी ड्रिंक लेने के लिए बाहर गयी हैं और जब भी वे मेरे बगैर पीती थीं, तो मुझे पता होता था कि वे कहीं अपने आपमें डूबी हुई हैं. यह शब्दों के साथ जायी जा सकने वाले जगह न होकर कोई तीसरी ही जगह होती थी. मैं लॉबी में खड़ी कुछ देर तक बाहर सड़क की ओर देखती रही.

हॉल के बाहर फुटपाथ पर रेत बिखरी हुई थी, जिससे बर्फ में बदसूरत छेद से बन गए थे. लेकिन मेरी मां की शक्लवाला कोई भी व्यक्ति मुझे वहां से गुजरता दिखाई नहीं दिया. उन्होंने लाल रंग का कोट पहन रखा था. तुम्हें अब मुझसे प्यार नहीं रहा, है न, एक बार उन्होंने मेरी देखते हुए कहा था, तो मुझे लगा था कि उन्हें मुझ पर किसी और ही का धोखा हुआ है. लेकिन ऐसा सिर्फ एक बार हुआ था.

जब भीतर स्टेज से संगीत की आवाजें आने लगीं तो मैं आखिरकार अपनी सीटों की ओर लौट गयी. हॉल में अब पहले

के मुकाबले काफी कम दर्शक रह गए थे. जादूगर के साथ स्टेज पर लाल रंग के स्विमसूट और ऊंची एड़ी वाले जूतों में एक औरत थी, जिसने हाथ में एक आरी पकड़ रखी थी. जादूगर ने कई बार उस आरी से लकड़ी के टुकड़े काटकर उसके असली होने का सुबूत दिया. अब देख सकते थे. फिर एक पहियों वाली टेबल मंच पर लायी गई और दो पीस के स्विमसूट वाली वह औरत उस पर लेट गयी. उसका पेट बिल्कुल सफेद था.

जादूगर बड़बड़ाता हुआ उस आरी को बार-बार हवा में लहराने लगा. मुझे लगा कि अब वह उस औरत को काटेगा. यह खेल मुझे जरूरी तौर पर देखना था. मैंने मन ही मन सोचा कि वह सिर्फ उस औरत को सिर्फ दो टुकड़ों में करने जा रहा है, वह बहुत भयानक है और वह नहीं चाहता कि उसे देखते हुए कोई बेहोश हो जाए. इस वजह से उस औरत के ठीक सामने एक छोटा सा पर्दा लगा दिया, जिसकी वजह से उस औरत का पेट हमें दिखाई देना बंद हो गया, हालांकि उसका चेहरा और उसके जूते अब भी सब लोग देख सकते थे.

देखा जाए तो उस पर्दे की कोई जरूरत नहीं थी. बल्कि मेरा वश चलता तो मैं उसके दूसरी तरफ जाकर बैठती. दर्शकों में बहुत से लोग जोर से चीखे. आरे से काटे जाने वाली औरत ने अपने होंठ चबाए. उसका चेहरा चिंतित लग रहा था.

और यही वह क्षण था जब मैंने अपनी मां को मंच पर आते हुए देखा. वे कुछ झुकी हुई सी थी, क्योंकि स्टेज पर चढ़ने की कोशिश में उनका संतुलन बिगड़ गया था. अपने सुपरिचित कोट में वे बहुत बड़ी-बड़ी और अजीब लग रही थीं. बल्कि उनका वह सुपरिचित कोट ही सबसे अजीब लग रहा था. दर्शकों में कोई फिर से चिल्लाया, लेकिन इस बार उस चीख में अनिश्चय था. मेरी मां लगातार बोलती और मुसकराती हुई उस जादूगर की ओर बढ़ी. वे अपने हाथ बार-बार हिला रही थीं. जादूगर ने कहा कि नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है, आपको पता होना चाहिए कि यह सिर्फ एक खेल है, आप यहां इस तरह कैसे आ सकती हैं, जाइए, प्लीज, बैठ जाइए...

मेरी मां ने कहा, “आप समझते क्यों नहीं, मैं अपनी मर्जी से इसके लिए तैयार हूं, हालांकि मुझे इसके खतरों का भी अंदाज है और ऐसा नहीं कि मैं आपका यकीन नहीं करती, चाहे कोई आप यकीन न करे, लेकिन आप मुझ पर पूरा भरोसा कर सकते हैं और मुझमें आपका यकीन बिल्कुल वाजिब होगा क्योंकि मैं इस सबका हिस्सा नहीं हूं और चूंकि मुझे पता नहीं कि यह सब कैसे होता है, इसलिए मुझ पर भरोसा करना मुश्किल भी नहीं होगा...”

मेरे पास बैठे किसी व्यक्ति ने कहा, “क्या तमाशा है, यह औरत कहां से टपक पड़ी आरे से कटने के लिए...इसे क्या

चाहिए...” जादूगर ने जोर से कहा, “लेडी,” तो मुझे लगा कि अभी कोई कुत्ता वहां आ जाएगा क्योंकि मैं ‘लेडी’ नाम के एक कुत्ते को जानती थी जिसके पास बहुत सारी रंगीन गेंदें थीं।

मेरी मां ने कहा, “हममें से ज्यादातर लोग नहीं समझते हैं, मुझे मालूम है और इसमें हर्ज भी क्या है क्योंकि जो हम समझते हैं, वही बहुत है उनके लिए और हम हैं भी ऐसी ही...”

उन्हें शायद लगा होगा कि वे अब भी उस जगह पर हैं, अपने-आपमें डूबी हुई लेकिन वे जो भी सोच रही थी वह उनके मुंह से शब्दों की शक्ति में बाहर आ रहा था। उनकी लिपस्टिक मिट चुकी थी। कहीं वे अपने आपको किसी और ही के वेष में तो महसूस नहीं कर रही थी, मैंने सोचा।

“लेकिन क्यों नहीं, मेरी मां ने कहा, हम सभी तो जाकर वापस लौट आना चाहते हैं और इसलिए हम यहां भी आए हैं और हम क्यों उम्मीद न करें कि ऐसा हो जाएगा और आप ऐसी उम्मीद करें कि हम हर रोज ऐसा करते-करते थकेंगे नहीं, लेकिन कब तक तुम बचते रहोगे और तुम्हें बच्चों के बारे में तो सोचना होगा...” बोलते-बोलते वे कुछ झुक गयीं...

“हे भगवान,” एक आवाज आयी, “इस औरत को तो चढ़ी हुई है। मेहरबानी करके बैठ जाइए,” किसी ने जोर से कहा।

फिर उसके बाद मेरी मां रोने लगीं और उन्होंने लड़खड़ाकर अपनी दोनों बांहें आगे फेंकी, जैसे अपने को थामने की कोशिश करने वाले किसी व्यक्ति को धक्का दे रही हों। लेकिन वहां कोई उन्हें थामने की कोशिश नहीं कर रहा था। ऑरकेस्ट्रा फिर से बजने लगा और लोगों ने तालियां बजानी शुरू कर दीं। गेटकीपर स्टेज पर दौड़ा चला आया और उसने मेरी मां का हाथ थाम लिया। यह सब जैसे पलक झपकने की देर में हो गया। उसने उनसे कुछ कहते हुए हाथ थामा और मेरी मां ने भी उससे अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश नहीं की। फिर दोनों धीरे-धीरे मंच की सीढ़ियों से उतरकर गलियारे में आगे आए और मेरे पास आकर ठिठके, क्योंकि गेटकीपर को मालूम था कि मैं अपनी मां की बेटी हूं। मैं उठकर चुपचाप उनके पीछे-पीछे चल दी, हालांकि अपने खयालों में मैं अब भी उस सीट पर बैठी हुई थी। सबने हमें बाहर जाते हुए देखा। लेकिन उनमें से किसी ने ध्यान नहीं दिया कि मैं भी उन सबके बीच थी, इस सारे नजारे को दूर से देखती हुई।

हम हॉल से सीधे बाहर निकलकर सड़कों पर आ गए। मेरी मां उस टिगने से गेटकीपर के कंधे से लगी रोए जा रही थीं। उसके कोट के कंधों में भीतर गत्ता लगा था और बाहर जरी के सुनहरे छल्ले बने हुए थे। हमें मार डालने के लिए कहीं ले जाया जा रहा था, जो कि मेरे हिसाब से उचित ही था। गेटकीपर के

बड़े-बड़े कान थे और उसकी गर्दन पर कॉलर के ठीक ऊपर एक गूमड़ था।

चलते-चलते वह मेरी मां के कान में सीधे स्वर में कुछ बोलता जा रहा था जिससे धीरे-धीरे वे कुछ संभल रही थी। मैंने मन में उस गेटकीपर के लिए बेइतहा नफरत महसूस की। शहर के फुटपाथ बर्फ से ढंके थे, जिन पर चलना आसान नहीं था। अपनी मां के कोट से लटकी बेल्ट को कसकर थामे मैं किसी तरह लुढ़कती-पुढ़कती आगे बढ़ती रही।

“देखो, मैंने खुद कैसे अपने को खींच निकाला है,” वह कह रहा था। “तुम भी इससे बाहर निकल सकती हो.” वह मेरी मां से बातें कर रहा था।

एक कॉफी की दुकान के भीतर हम एक केबिन में जाकर बैठ गए। “यहां तुम इत्मीनान से अपने-आपको संभालो,” वह कह रहा था। “यहां जितनी देर चाहो बैठो, कॉफी पियो, कोई तुम्हें उठने के लिए नहीं कहेगा। मैं क्या डोनट खाऊंगी,” उसने मुझसे पूछा। मुझे उससे बात ही नहीं करनी थी। अगर यह फिर मुझसे बोला तो मैं इसे काट खाऊंगी, मैंने सोचा। काउंटर के पीछे की दीवार केक और सैंडविचों की तस्वीरों से ढंकी हुई थी। मेरा वहां रुकने का कोई इरादा नहीं था और इसीलिए मैंने अपना कोट और अपने दस्ताने भी नहीं उतारे। टिगना गेटकीपर काउंटर तक गया और मेरी मां के लिए एक कॉफी और मेरे लिए प्लेट में डोनट लेकर लौट आया। “ओह, यह मैंने क्या किया,” मेरी मां बोली और अपना सिर जोर-जोर से हिलाने लगी।

“मैंने देखते ही तुम्हारे बारे में जान लिया था,” गेटकीपर ने कहा, “तुम्हें अपने-आपको संभालना होगा। मुझे खुद पुल में कूदने और अपनी दोनों टांगें तुड़वाने के बाद ही अक्ल आयी। तुम क्या ऐसा करना चाहोगी?”

मेरी मां ने उसकी ओर देखा। “मैं तो सोच भी नहीं सकती थी,” उन्होंने कहा।

बाहर एक बच्ची अपनी स्लेज को साथ लिए जा रही थी। बार-बार मुड़कर वह अपने पीछे-पीछे घिसटकर आती स्लेज को प्रशंसात्मक नजरों से देखती।

तुम एक मां भी हो, गेटकीपर ने मेरी मां से कहा, तुम्हें अपने आपको किसी तरह खींचकर निकालना ही होगा।

मुझे लगा कि उसकी दया ने हमें रस्सी से बांध दिया। आखिरकार जब वह हमें छोड़कर गया तो मेरी मां ने टेबल पर अपना सिर रखा और वे उसी तरह सो गयीं। मैंने कभी अपनी मां को सोते हुए नहीं देखा था। मैं उन्हें वैसे ही देखती रही जैसे उन्होंने कभी मुझे देखा होगा, या जैसे हर कोई किसी सोयी हुई

लघुकथा

कैसी जागृति

रविन्द्र सिंह

श्रीमान विजय गोयल 'बेटी बचाओ और बेटी पढ़ाओ' की जागृति रैली में कदम से कदम बढ़ाकर अपनी कटोर व कर्कश आवाज से लोगों को जगाने का प्रयास कर रहे थे। तभी एक छोटी-सी बच्ची ने अपने नन्हें-नन्हें हाथों को फैलाकर कहा-“साहब! कुछ दे दो, मुझे भूख लगी है।”

विजय गोयल ने इस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई। उस बच्ची की पुनः वहीं मांग, पर गोयल जी ने टका-सा जवाब दे दिया।

इस पर बच्ची ने अपने छलकते आंसुओं को पोंछते हुए कहा-

“ये बचाएंगे बेटियों को! हमें खाने को तो दे नहीं सकते, पढ़ाएंगे क्या खाक?”

बच्ची की यह बात पूरे रास्ते विजय गोयल को कचोटती रही।

संपर्क: 949, गांव व डाकखाना-कौला न्यू कॉलोनी
जिला-अम्बाला हरियाणा-134003
मो: 9466688624



चीज को देखता है, बगैर यह जाने कि आगे कैसे क्या होगा। फिर अपने दस्ताने वाले हाथों में डोनट लेकर मैंने उसे धीरे-धीरे खाना शुरू कर दिया। ऊन के रेशों के खट्टे स्वाद में मिले डबलरोटी के कणों के स्वाद में मैं खो गयी और मैंने कल्पना की कि कोई मुझे अपने हाथों से खिला रहा है।

सच कहूं तो मेरी मां आखिर अपने आपको बाहर नहीं निकाल पायीं, लेकिन यह काफी बाद की बात है। उस वक्त तक अंत काफी दूर था और जब मेरी मां नींद से जागीं तो हमने अपनी कार ढूंढी और पोर्टलैंड से लौट आए। मेरी मां बार-बार मेरा नाम दोहराती जा रही थीं। “लिजी,” उन्होंने कहा। “लिजी.” मुझे लगा, और यह जैसे मेरी मां को भी मालूम था, कि मैं उनके साथ ही कहीं हूं, लेकिन घर की ओर लौटती उस खटारा नीली कन्वर्टिबल गाड़ी में नहीं और किसी दूसरी जगह पर। वहां से मैं आखिरकार निकली जरूर, लेकिन बाहर आने में मुझे बरसों लग गए।



गजल

मोह. मुइनुद्दीन 'अतहर'



इस कदर जौके जुनूं बेदार होना चाहिये
दामने-सेहरा भी लालाजार होना चाहिये

अपने ही आमाल से बनते हैं यां पीर-ओ-फकीर
आदमी को साहिबे-किरदार होना चाहिये

उम्र भर सोता रहेगा कुछ तो कर फिक्रे-अबद
मर्दे-नादां अब तुझे बेदार होना चाहिये

हर कदम पर जिन्दगी के अब सम्भलना है तुझे
तुझको अपने मुल्क का मेमार होना चाहिये

सर उठाने लग गई है बाग की ठण्डी हवा
अब तो हर इक फूल में भी खार होना चाहिये

कल्ल कर सकता है क्या कोई तेरे आमाल को
जुल्म की तलवार में भी धार होना चाहिये

तुम भी पा सकते हो 'अतहर' की तरह मंजिल यहां
जिन्दगी के रास्ते हमवार होना चाहिये

संपर्क: सम्पादक/प्रकाशक 'लघुकथा अभिव्यक्ति'
1308, अजीजगंज, पसियाना, शास्त्री वार्ड,
जबलपुर-482002 (म.प्र.)



लाजवन्ती

राजेन्द्रसिंह बेदी

‘हथ लांयां कुमलान नी लाजवन्ती दे बूटे!’

‘ये लाजवन्ती के पौधे हैं, हाथ लगाते ही कुम्हला जाते हैं.’

बंटवारा हुआ और अनगिनत घायल लोगों ने उठकर अपने शरीर से खून पोंछ डाला, और फिर उन लोगों की ओर आकर्षित हो गये, जिनके शरीर तो स्वस्थ थे, लेकिन दिल घायल थे.

गली-गली मुहल्ले-मुहल्ले में ‘फिर बसाओ’ कमेटियां बन गयी थीं और शुरू-शुरू में बड़े परिश्रम के साथ ‘कारोबार में बसाओ,’ ‘धरती पर बसाओ’ और ‘घरों में बसाओ’ प्रोग्राम शुरू कर दिया गया था. किन्तु एक प्रोग्राम ऐसा था, जिसकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया. वह प्रोग्राम भगायी हुई औरतों के सम्बन्ध में था, जिनका नारा था, ‘दिल में बसाओ’ और नारायण बाबा के मन्दिर और उसके आस-पास बसने वाले पुरानपंथी दल की ओर से इस प्रोग्राम का बड़ा कड़ा विरोध हो रहा था.

इस प्रोग्राम को व्यावहारिक रूप में लाने के लिये मन्दिर के पास मुहल्ला-मुल्ला शकूर में एक कमेटी बन गयी और ग्यारह वोटों के बहुमत से सुन्दरलाल बाबू को उसका सेक्रेटरी चुन लिया गया. वकील साहब प्रधान हुए. चौकी कलां के बूढ़े मुहर्रिर और मुहल्ले के दूसरे प्रतिष्ठित लोगों का विचार था कि सुन्दरलाल से अधिक लगन से उस काम को कोई और न कर सकेगा, शायद इसलिये कि सुन्दरलाल की अपनी पत्नी भी इस दुर्घटना की चपेट में आ चुकी थी, जिसका नाम था लाजो-लाजवन्ती.

चुनांचे प्रभात फेरी निकालते हुए जब सुन्दरलाल बाबू और उनके साथी रसालू, नेकीराम आदि गाते-हथ लांयां कुमलान नी लाजवन्ती दे बूटे-तो सुन्दरलाल का कण्ठ एकदम भर आता और वह खामोशी के साथ चलते-चलते लाजो के संबंध में सोचते, ‘जाने वह कहां होगी, वह कभी आयेगी भी या नहीं?’ और पथरीली सड़क पर चलते-चलते उनके कदम लड़खड़ाने लगते.

और अब तो यह हालत हो गयी थी कि उन्होंने लाजवन्ती के संबंध में सोचना ही छोड़ दिया था, उनका दुख संसार का बन गया था, उन्होंने इस दुख से बचने के लिये अपने आप को लोक-सेवा में डुबो दिया था किन्तु इसके बावजूद साथियों के स्वर-में-स्वर मिलते हुए उन्हें इसका विचार जरूर आ जाता-मनुष्य का हृदय कितना कोमल होता है! जरा-सी बात पर उसे ठेस लग सकती है, वह लाजवन्ती की बेल की तरह है, जिसकी

ओर हाथ बढ़ाओ तो मुरझा जाय. परन्तु उन्होंने लाजवन्ती के साथ निर्ममता बरतने में भी कोई कसर न उठा रखी थी. वह उसे मौके-बेमौके उठते-बैठते, खाते-पीते लापरवाही दिखाते हुए, साधारण-सी बातों पर भी पीट दिया करते थे.

और लाजो एक दुबली-पतली देहाती लड़की थी. धूप के कारण उसका रंग सांवला हो गया था, उसकी तबीयत में एक अजब तरह की व्याकुलता थी, लेकिन उसकी व्याकुलता ओस की बूंद की तरह थी, जो पलास के बड़े पत्ते पर इधर-उधर टुलकती रहती है. उसका दुबलापन उसकी अस्वस्थता की दलील न थी, उलटे वह स्वास्थ्य की निशानी थी, जिसे देखकर भारी-भरकम सुन्दरलाल पहले तो घबराये लेकिन उन्होंने देखा कि लाजो हर तरह का बोझ, हर तरह का दुख, यहां तक कि मार-पीट तक को सहन कर लेती है तो वह अपनी ज्यादाती क्रमशः बढ़ाते गये और उन्होंने उन सीमाओं का भी विचार न किया, जहां पहुंचकर किसी मनुष्य का सब्र टूट सकता है परन्तु लाजो थी कि उन सीमाओं को धुंधलाने की सामर्थ्य प्राप्त कर चुकी थी. वह बहुत देर तक दुखी हृदय लेकर बैठ नहीं सकती थी इसीलिये बड़ी-से-बड़ी लड़ाई के बाद सुन्दरलाल के केवल एक बार मुस्करा देने पर वह अपनी हंसी न रोक पाती और केवल इतना कह देती-अबकी मारोगे तो मैं तुमसे कभी न बोलूंगी और साफ मालूम होता कि वह सारी मारपीट को एकदम भूल चुकी है. गांव की दूसरी लड़कियों की तरह वह भी जानती थी कि पति अपनी पत्नियों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया करते हैं. यदि कोई पत्नी थोड़ी-सी भी मुंहजोर होती है तो औरतें खुद ही नाक पर उंगलियां रखकर कहतीं-वह भी कोई मर्द है कि दो हाथ की औरत काबू में नहीं आती.

और यह मार-पीट उनके गीतों में भी समा गयी थी. खुद लाजो गाया करती थीं-‘मैं शहर के जवान से शादी नहीं करूंगी. वह बूट पहनता है और मेरी कमर बड़ी पतली है.’-किन्तु पहले ही अवसर पर लाजो ने शहर के एक छोकरे से लौ लगा ली, जिसका नाम था सुन्दरलाल. जो एक बारात के साथ लाजवन्ती के गांव चला आया था और जिसने उस बारात के दूल्हे के कान में केवल इतना कहा था, ‘तेरी यह साली तो बड़ी नमकीन है यार, बीबी भी चटपटी होगी’ और लाजवन्ती ने सुन्दरलाल की इस बात को सुन लिया था और वह शायद यह भूल ही गयी थी कि सुन्दरलाल ने कितने बड़े-बड़े भद्दे बूट पहन रखे हैं और उसकी अपनी कमर कितनी पतली है.

प्रभात फेरी के समय ऐसी ही बातें सुन्दरलाल को याद आतीं और यह सोचते, एक बार, केवल एक बार लाजो मिल जाय तो सचमुच ही मैं उसे दिल में बसा लूं और लोगों को बता दूं कि उन बेचारी औरतों के जाने में उनका कोई दोष नहीं है, दंगों की

दुर्घटनाओं का शिकार हो जाने में उनकी कोई गलती नहीं और यह समाज जो इन मासूम और निर्दोष औरतों को स्वीकार नहीं करता, उन्हें अपनाता नहीं, वह तो गला-सड़ा समाज है, जिसे मिटा देने में ही भला है.

वे भगायी हुई औरतों को घर में आबाद करने के विचार में निमग्न रहते और उन्हें उस पद पर आसीन देखना चाहते जो घर में किसी भी औरत, किसी भी मां, बेटी, बहन या पत्नी को शोभा देता है.

‘दिल में बसाओ’ प्रोग्राम को व्यावहारिक रूप में लाने के लिये मुहल्ला मुल्ला शकूर की इस कमेटी ने कई प्रभात-फेरियां निकालीं. सुबह चार-पांच बजे का समय इसके लिये बड़ा उपयुक्त होता था. न लोगों का शोर, न सभाइयों की उलझन, रात-भर चौकीदारी करने वाले कुत्ते तक बुझे हुए तन्दूरों में सिर देके पड़े होते थे. अपने-अपने बिस्तरों में दुबके हुए लोग जागकर केवल इतना कहते थे. ‘ओह, वही मण्डली है.’ कभी शांति और कभी क्रोध से वे बाबू सुन्दरलाल का प्रचार सुना करते. वे औरतें तो बड़ी हिफाजत से इस पार पहुंच गयी थीं, गोभी के फूलों की तरह फैली पड़ी रहतीं और उनके पति या संबंधी डंटलों की तरह अकड़े पड़े-पड़े प्रभात-फेरी के शोर पर भुनभुनाते हुए चले जाते, या कहीं कोई बच्चा थोड़ी देर के लिये आंखें खोलता और ‘दिल में बसाओ’ के फरियादी और करुण प्रचार को एक गाना समझकर फिर सो जाता.

लेकिन सुबह के समय कान में पड़ा हुआ शब्द अकारथ नहीं जाता, वह सारे दिन एक गूंज की तरह दिमाग में चक्कर लगाता है. कभी-कभी तो आदमी उसके अर्थ को न समझकर भी गुनगुनाता चला जाता है. इसी स्वर के मन में घरकर जाने की बदौलत ही था कि उन्हीं दिनों जब मिस मृदुला साराभाई पाकिस्तान से भगायी हुई स्त्रियों को बदले में भारत लायीं तो मुहल्ला-मुल्ला शकूर के कुछ आदमी उन्हें फिर से बसाने के लिये तैयार हो गये. उनके भाई-बन्धु शहर से बाहर चौकी कलां पर उनसे मिलने के लिये गये और बेचारी अबला स्त्रियां और उनके भाई-बन्धु कुछ देर एक-दूसरे को देखते रहे और सिर झुकाकर अपने बरबाद घरों को आबाद करने के काम पर चल दिये. रसालू, नेकी राम और सुन्दरलाल बाबू कभी ‘माहेन्दरसिंह जिन्दाबाद’ और कभी ‘सोहनलाल जिन्दाबाद’ के नारे लगाते. और वह नारे लगाते रहे, इतना कि उनके गले सूख गये.

लेकिन भगायी हुई स्त्रियों में से कुछ ऐसी भी थीं, जिनके पति, मां, बाप, बहन और भाइयों ने उन्हें पहचानने में असमर्थता प्रकट कर दी थी. आखिर वे मर क्यों न गयीं, अपनी मर्यादा और लाज को बचाने के लिये उन्होंने विष क्यों नहीं पी लिया, कुओं में छलांग क्यों न लगा दी? वे कायर थीं जो इस प्रकार जीवन से

चिपटी रहीं. सैकड़ों हजारों औरतों ने अपनी मर्यादा लुट जाने से पहले प्राण दे दिये—किन्तु क्या मालूम कि वे जीवित रहकर कितनी बहादुरी से काम ले रही हैं और किस तरह वे पथरायी निगाहों से मौत को घूर रही हैं—इस संसार में जहां उनके पति तक उन्हें नहीं पहचानते. फिर उनमें से कोई मन-ही-मन अपना नाम दोहराती है, ‘सुहागवन्ती-सुहागवन्ती...’ और अपने भाई को उस भीड़ में देखकर आखिरी बार इतना-सा कहती है, ‘तू भी मुझे नहीं पहचानता, बिहारी? मैंने तुझे गोदी में खिलाया है रे, और...’ बिहारी चीख उठना चाहता है, फिर वह मां-बाप की ओर देखता है और मां-बाप अपने कलेजे पर हाथ रखकर नारायण बाबा की ओर देखते हैं और बहुत ही बेबसी के भाव में नारायण बाबा आकाश की ओर देखते हैं जिसकी वास्तव में कोई यथार्थता नहीं है, जो केवल हमारी नजर का धोखा है, जो केवल एक सीमा है जिसके पार हमारी निगाहें काम नहीं करतीं.

लेकिन फौजी ट्रक में मिस साराभाई बदले में जो स्त्रियां लायीं, उनमें लाजो नहीं थी. सुन्दरलाल ने बड़ी निराशा से आखिरी लड़की को ट्रक से नीचे उतरते देखा और फिर उन्होंने बड़ी खामोशी और दृढ़ता से अपनी कमेटी की सरगर्मियों को बढ़ा दिया. अब वे सुबह ही के समय प्रभात-फेरी के लिये नहीं निकलते, बल्कि शाम को भी वे जुलूस निकालने लगे और कभी-कभी छोटी-मोटी सभा भी करने लगे, जिसमें उस कमेटी के बूढ़े सभापति वकील कालिका प्रसाद ‘सूफी’ खंखारों से मिले-जुले भाषण दे दिया करते और रसालू पीकदान लिये ड्यूटी पर हमेशा मौजूद रहता. लाउडस्पीकर से अजीब तरह की आवाजें आतीं—खा, हा, हा, खा, खा—और फिर नेकीराम भी कुछ कहने के लिये उठते. परन्तु वे जितनी बातें कहते, उनमें शास्त्रों और पुराणों का उदाहरण देते. इतना कि अपने और अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध भी बहक जाते और इस प्रकार मैदान हाथ से जाता देखकर बाबू सुन्दरलाल उठते. लेकिन वे दो वाक्यों से अधिक कुछ न कह पाते. उनका गला भर जाता और उनकी आंखों से आंसू टपकने लगते और रुआंसे होने के कारण भाषण पूरा नहीं कर पाते और अपनी जगह पर बैठ जाते. सुनने वालों पर एक विशेष प्रकार का मौन छा जाता और सुन्दरलाल के उन दो वाक्यों का असर, जो कि उनके दिल की गहराइयों से निकल आते थे, वकील कालिका प्रसाद ‘सूफी’ के सारगर्भित उपदेशों के ऊपर छा जाता और लोग वहीं रोककर अपनी भावनाओं को शांत कर लेते. फिर खाली मन लिये घर लौट जाते.

एक दिन कमेटी वाले शाम के समय भी प्रचार करने के लिये चले आये और होते-होते पुरान-पंथियों के दुर्ग में पहुंच गये. मन्दिर के बाहर पीपल के एक पेड़ के आसपास सीमेंट के चबूतरे पर श्रद्धालु भक्तजन बैठे थे और रामाण की कथा हो रही थी.

नारायण बाबा रामायण के लवकुश-काण्ड का वह भाग सुना रहे थे, जहां एक धोबी ने अपनी धोबिन को घर से बाहर निकाल दिया था और उससे कह दिया था कि मैं रामचन्द्र नहीं, जिन्होंने इतने वर्ष रावण के साथ रह आने पर भी सीता को बसा लिया, और राजा रामचन्द्र ने महारानी सीता को अपने महल से निकाल दिया, उस हालत में जबकि वे गर्भवती थीं. क्या इससे भी बढ़कर कोई रामराज्य का उदाहरण मिल सकता है? नारायण बाबा ने कहा, ‘यह है रामराज्य जिसमें एक धोबी की बात को भी उतने महत्व की दृष्टि से देखा जाता था—’

कमेटी का जुलूस मन्दिर के पास रुक चुका था और लोग रामायण की कथा और श्लोकों के अर्थ सुनने के लिये ठहर गये थे. सुन्दरलाल ने आखिरी वाक्य सुना और कहा, ‘हमें ऐसी रामायण नहीं चाहिए, बाबा!’

‘चुप रहो जी, तुम कौन हो? खामोश.’ भीड़ में से आवाजें आयीं.

और सुन्दरलाल ने बढ़कर कहा, ‘मुझे बोलने से कोई नहीं रोक सकता!’

मिली-जुली आवाजें आयीं, ‘खामोश! हम नहीं बोलने देंगे!’

और एक कोने से यह भी आवाज आयी, ‘मार देंगे!’

नारायण बाबा ने बड़ी मीठी आवाज में कहा, ‘तुम शास्त्रों की मान-मर्यादा को नहीं समझते, सुन्दरलाल!’

सुन्दरलाल ने कहा, ‘मैं एक बात समझता हूं, बाबा कि रामायण में धोबी की आवाज तो सुनी जाती है किन्तु रामराज्य के चाहने वाले सुन्दरलाल की आवाज नहीं सुनते!’

उन्हीं लोगों ने, जो अभी मार-पीट पर तुले हुए थे, अपने नीचे से पीपल की गुलरें हटा दीं और फिर से बैठते हुए बोल उठे, ‘सुनो, सुनो, सुनो!’

रसालू और नेकीराम ने सुन्दरलाल को बढ़ावा दिया और सुन्दरलाल बोले—

‘श्री रामचन्द्र हमारे नेता थे किन्तु यह क्या बात है बाबा जी कि उन्होंने धोबी की बात को सत्य समझ लिया, परन्तु इतनी बड़ी सतवन्ती महारानी सीता के सतीत्व पर विश्वास नहीं कर पाये!’

नारायण बाबा ने अपनी दाढ़ी की खिचड़ी पकाते हुए कहा—

‘सीता जी उनकी अपनी पत्नी थीं, सुन्दरलाल! तुम उस बात की गहराई को नहीं जानते.’

‘हां, बाबा!’ सुन्दरलाल ने कहा, ‘इस संसार में बहुत-सी बातें हैं, जो मेरी समझ में नहीं आतीं. परन्तु मैं सच्चा राम कार्य उसे समझता हूं जिसमें मनुष्य अपने आप पर भी अत्याचार न कर सके. अपने आप से अन्याय करना भी उतना ही बड़ा पाप है, जितना किसी दूसरे पर करना और आज भी भगवान राम ने सीता जी को घर से निकाल दिया है...इसलिये कि वह रावण के

पास रह आयी थीं, इसमें क्या दोष था सीता जी का? क्या वे भी हमारी बहुत-सी मां-बहनों की तरह छल और कपट का शिकार न हुई थीं। इसमें सीता जी के सत्य और असत्य की बात है या राक्षस रावण के अत्याचार की बात, जिसके दस सिर तो मनुष्य जैसे हैं और एक सबसे बड़ा सिर गदहे का है—आज हमारी सीता भी घर से निर्वासित कर दी गयी हैं,—“सीता-लाजवन्ती—” और सुन्दरलाल बाबू ने रोना शुरू कर दिया। रसालू और नेकीराम ने वह तमाम पोस्टर उठा लिये जिन पर आज ही स्कूल के लड़कों ने बड़ी सफाई से नारे काटकर चिपका दिये थे और फिर वह सब ‘बाबू सुन्दरलाल जिन्दाबाद’ के नारे लगाते हुए चल दिये। जुलूस में से एक ने कहा—‘महारानी सीता जिन्दाबाद.’ एक ओर से आवाज आयी—‘श्री रामचन्द्र...’ और फिर बहुत-सी आवाजें आयीं, ‘खामोश! खामोश!’

और नारायण बाबा की कथा अकारण हो गयी। बहुत से लोग जुलूस में शामिल हो गये, जिसके आगे-आगे वकील कालिका प्रसाद और हुकुम सिंह मुहर्नर चौकी कलां जा रहे थे अपनी बूढ़ी छड़ियों को जमीन पर पट-पट मारते एक हल्की सी आवाज करते हुए। उनके बीच में सुन्दरलाल जा रहे थे और उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे। आज उनके हृदय को बड़ी ठेस लगी थी और लोग बड़ी खुशी के साथ एक दूसरे के स्वर में स्वर मिलाकर गा रहे थे—

‘हम लांयां कुमलान नी लाजवन्ती दे बूटे.’

अभी गीत की धुन लोगों के कानों में गूँज ही रही थी, सुबह भी नहीं हो पायी थी और मुहल्ला मुल्ला शकूर के मकान नं. 404 की विधवा अपने बिस्तर की तहों में विरह भरी अंगड़ाई ले रही थीं कि सुन्दरलाल का दोस्त लालचन्द जिसे अपने असर और रसूख का प्रयोग करके सुन्दरलाल और कालिका प्रसाद ने राशन डिपो दिलाया था, दौड़ा-दौड़ा आया और अपनी गाढ़े की चादर से हाथ बाहर कर बोला—

‘बधाई हो, बाबू सुन्दरलाल!’

सुन्दरलाल ने गुड़ तम्बाकू में मिलाते हुए कहा, ‘किस बात की बधाई लालचन्द?’

‘मैंने लाजो भी को देखा है!’

सुन्दरलाल के हाथ से चिलम छूट गयी और मीठी तम्बाकू फर्श पर फैल गयी। ‘कहां देखा है?’ उन्होंने लालचन्द के कन्धों को पकड़ कर पूछा और जल्दी उत्तर न पाने पर झकझोर दिया।

‘वागह की सरहद पर.’

सुन्दरलाल ने लालचन्द को छोड़ दिया और सिर्फ इतना कहा, ‘कोई और होगी.’

लालचन्द ने विश्वास दिलाते हुए कहा, ‘नहीं भइया, वह लाजो ही थी, लाजो.’

‘तुम उसे पहचानते भी हो?’ सुन्दरलाल ने फिर से मीठी तम्बाकू को फर्श पर से उठाकर हथेली पर मलते हुए पूछा और ऐसा करते हुए उन्होंने रसालू की चिलम हुक्के पर से उठा ली और बोले, ‘भला क्या पहचान है उसकी?’

‘एक बुदना टोढ़ी पर है, दूसरा गाल पर...’

‘हां, हां, हां.’ और सुन्दरलाल ने खुद ही कह दिया, ‘तीसरा माथे पर.’ वह नहीं चाहते थे कि कोई संदेह रह जाय और एकदम उन्हें ताजवन्ती के जाने पहचाने शरीर के सारे गुदने याद आ गये जो उसने अपने शरीर पर बचपन में गुदवाये थे। वे गुदने जो हल्के-हल्के, हरे-हरे दानों की तरह थे, जो छुई-मुई की बेलों के शरीर पर होते हैं, बिल्कुल उसकी तरह उन गुदनों की ओर इशारा करते ही लाजवन्ती शरमा जाती थी, जैसे उनके सारे भेद किसी को मालूम हो गये हों और किसी नामालूम खजाने के लुट जाने से वह दरिद्र हो गयी हो... और सुन्दरलाल का शरीर एक अनजानी मुहब्बत और उसकी पवित्रता से सिहरने लगा। उन्होंने फिर से लालचन्द को पकड़ लिया और पूछा, लाजो वागह कैसे पहुंच गयी?’

लालचन्द ने कहा, ‘भारत और पाकिस्तान में औरतों का बदला हो रहा था न...’

‘फिर क्या हुआ?’ सुन्दरलाल ने उकड़ू बैठते हुए कहा।

रसालू भी अपनी चारपाई पर बैठा और तम्बाकू पीने वालों की विशेष खांसी खांसते हुए बोला, ‘सचमुच आ गयी है लाजवन्ती भाभी?’

लालचन्द ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा, ‘वागह में सोलह औरतें पाकिस्तान ने दे दीं और उसके बदले में सोलह औरतें ले लीं। लेकिन एक झगड़ा खड़ा हो गया। हमारे वालंटियर विरोध कर रहे थे कि तुमने जो औरतें दी हैं उनमें अंधेड़, बूढ़ी और बेकार औरतें ज्यादा हैं। इस झगड़े पर लोग इकट्ठे हो गये। उस समय उधर के वालंटियरों ने लाजो भाभी को दिखाते हुए कहा—तुम इसे बूढ़ी कहते हो!—देखो, जितनी लड़कियां तुमने दी हैं, उनमें से एक भी बराबरी करती हैं इसकी? और वहां लाजो भाभी सबकी नजरों के सामने अपने गुद ने छिपा रही थीं।

‘फिर झगड़ा बढ़ गया। दोनों ने अपना-अपना माल वापस लेने की ठान ली। मैंने शोर मचाया—आओ, लाजो भाभी!’ मगर शोर मचाने पर हमारी फौज के सिपाहियों ने हमें मार-मारकर भगा दिया।

और लालचन्द अपनी कोहनी दिखाने लगा, जहां उसे लाठी भी पड़ी थी।

रसालू और नेकीराम चुपचाप बैठे रहे और सुन्दरलाल कहीं दूर देखने लगे या शायद कुछ सोचने लगे, ‘लाजो आयी, पर न आयी—’ और सुन्दरलाल की सूरत से जान पड़ने लगा, जैसे वह

बीकानेर के तपते हुए हजारों मील के रेगिस्तान को फांदकर आये हैं और अब कहीं पेड़ की छांव में जबान बाहर लटकाये हांफ रहे हैं और मुंह से इतना भी नहीं निकलता, 'पानी दे दो!' उन्हें ऐसा अनुभव हुआ जैसे बंटवारे के बाद की हिंसा अभी तक वैसी ही है, बल्कि और शक्ति पा गयी है, केवल उसकी सूरत बदली है. अब लोगों में आपसी सहानुभूति भी नहीं रही. किसी से पूछो, 'संभर-बाल में लहनासिंह रहा करता था और उसकी भाभी बन्तो-' तो वह झट से कहता, 'मर गये.' और उसके बाद मौत और उसके अर्थ से बिल्कुल बेखबर, बिल्कुल खाली आगे चला जाता. इससे भी बढ़कर एक कदम आगे बिल्कुल ठंडे हृदय से मानवता को जननी के सौदागर मानवता के लोहू और मांस की सौदागरी और उसका लेन-देन करने लगे, जैसे मंडियों में मवेशी खरीदने वाले किसी भैंस या गाय का जबड़ा हटाकर दांतों से उसकी उम्र का अंदाजा करते हैं, उसी तरह वे जवान औरत के रूप उसके निखार और उसके प्यार के रहस्यों और गुबनों की सरेआम प्रदर्शनी करने लगे और यह संस्कार सौदागरों के रोम-रोम में बस गया था. पहले मंडी में माल-ताल बिकता था और भाव-ताव करने वाले हाथ मिलाकर, उस पर एक रूमाल डाल लेते और रूमाल के नीचे उंगलियों के इशारे से सौदा हो जाता था. अब तो जैसे वह रूमाल भी हट चुका था और सामने सौदे हो रहे थे और लोग सौदागरी की परम्पराओं को भी भूल गये थे. वह सारा लेन-देन वह सारा करोबार, 'बोकशियो' की कहानी मालूम हो रहा था—एक ऐसा वर्णन जिसमें औरतों के क्रय-विक्रय की कहानी कही जाती है और 'उजबक' अनगिनी नग्न औरतों के सामने उनके शरीर को टोह-टोह के देख रहा है. जब वह किसी औरत के शरीर को उंगली से छूता है तो उस पर एक गुलाबी-सा गढ़ा पड़ जाता है और उसके गिर्द एक जर्द-सा घेरा और फिर वह जर्दी और सुखी एक-दूसरे की जगह लेने के लिये दौड़ पड़ती है.—उजबक आगे निकल जाता है और निकाली हुई औरत एक पराजय की भावना हृदय में लेकर अपमान की ज्वाला में एक हाथ से नाड़े को थामे और दूसरे से अपने चेहरे को लोगों की निगाहों से छिपाये सुबकियां लेती है. कुछ आगे चलकर उसमें जैसे पराजय की भावना भी नहीं रह जाती. वह उसी तरह नंगी 'सिकन्दरिया' के बाजारों में से गुजरती है और फिर त्राईफेरा के रूप में अपनी सहेली 'सैसो' से कहती है, 'सैसो', यह कौन जालिम मसखरा है जिसने सामने की दीवारों पर लिख दिया है—

बाकिस.

थेरसाइटिस के लिए.

दो 'ओबली' (एक छोटा सिक्का) में.'

और फिर वह कहती है, 'दो ओबली में?'

और फिर वह कहती है, 'मर्दों को यों हमारा मजाक उड़ाने की इजाजत नहीं होनी चाहिए. यदि बाकिस की जगम में होती तो जरूरत पूछताछ करती...' और...सैसो दो ही कदम आगे बढ़ती है कि उसे दीवार पर लिखा हुआ मिलता है—

'निदूस की सैसो

टायमन के लिये

एक मिना (एक बड़ा सिक्का) में...'

थोड़ी देर में सैसो का रंग पीला होता है और फिर वह उस लिखावट के नीचे खड़ी हो जाती है और इंतजार करती है, जबकि बाकी औरतें उसे ईर्ष्या और द्वेष से देखते हुए गुजरने लगती हैं.

सुन्दरलाल अमृतसर की सीमा पर जाने की तैयारी कर रहे थे कि उन्हें लाजो के आने की खबर मिली. एकदम इस खबर के मिलते ही सुन्दरलाल घबरा गये, उनका एक कदम फौरन दरवाजे की ओर बढ़ा, किन्तु वह फिर पीछे लौट आये. उनका जी चाहता था कि वे रुक जायें और कमेटी के तमाम 'प्लेकार्डों और पोस्टरों' को बिछाकर बैठ जायें और खूब जी भर कर रोयें. किन्तु वहां भावनाओं का इस प्रकार प्रदर्शन मुमकिन नहीं था. उन्होंने अपने पुरुष के पुरुषत्व से खींचातानी की, प्रतिरोध किया और अपने डगों से धरती को नापते हुए चौकी कलां की ओर चल दिये. यह वह जगह थी जहां भगायी हुई औरतों की डिलीवरी दी जाती थी.

अब लाजो सामने खड़ी थी और किसी आशंका से कांप रही थी. वह सुन्दरलाल को जानती थी, उसके सिवा उन्हें कोई नहीं जानता था. वह पहले ही उसके साथ बुरा बर्ताव करते थे और अब जबकि वह पराये मर्द के साथ जीवन के कितने ही दिन बिताकर आयी थी, न जाने क्या करेंगे? सुन्दरलाल ने लाजो की ओर देखा, वह शुद्ध इस्लामी ढंग का काला दुपट्टा ओढ़े हुए थी और बायां पल्ला डाले हुई थी—आदत, केवल आदत—दूसरी आदतों में घुल-मिल जाने और पिंजरे से भाग जाने की आसानी थी परन्तु वह सुन्दरलाल के संबंध में इतना अधिक सोच रही थी कि उसे अपने कपड़े बदलने और दुपट्टा ठीक से ओढ़ने की भी सुध न थी. वह हिन्दू और मुसलमान के बुनियादी अन्तर 'दायां पल्ला, बायां पल्ला' के गुण-दोष परखने में भी असमर्थ थी. अब वह सुन्दरलाल के सामने खड़ी थी और कांप रही थी एक आशा और निराशा के भय की भावना के साथ.

सुन्दरलाल को धक्का-सा लगा. उन्होंने देखा, लाजवन्ती का रंग पहले से कुछ निखर गया था और वह पहले की अपेक्षा स्वस्थ भी नजर आती थी. नहीं यह मोटी भी हो गयी थी. सुन्दरलाल ने जो कुछ लाजो के संबंध में सोच रखा था, वह सब झूठ था. वे समझते थे, दुख में घुल जाने के कारण लाजवन्ती बिल्कुल मरियल हो चुकी होगी और आवाज उसके मुंह से निकाले भी न

निकलती होगी. इस विचार से कि वह पाकिस्तान में बड़ी खुश रही है, उन्हें ठेस-सी लगी. किन्तु वे चुप रहे क्योंकि उन्होंने चुप रहने की सौगन्ध खा रखी थी, यद्यपि वे नहीं जान पाये कि अगर वहां इतनी खुश थी तो चली क्यों आयी? उन्होंने सोचा शायद भारत सरकार के दबाव के कारण उसे अपनी मर्जी के विरुद्ध यहां आना पड़ा है किन्तु वह एक चीज समझ नहीं सके कि लाजवन्ती का सवलाया हुआ चेहरा जर्दी लिये हुए था और क्लेश, केवल क्लेश के कारण उसके शरीर पर मांस ने हड्डियों को छोड़ दिया था. वह दुख की मार से मोटी हो गयी थी और स्वस्थ-सी नजर आती थी. लेकिन वह ऐसा मुटापा था जिसमें दो कदम चलने पर आदमी की सांस फूल जाती है.

लाजो के चेहरे पर पहली निगाह पड़ने का प्रभाव कुछ अजीब-सा हुआ लेकिन अपने सारे विचारों का उन्होंने दृढ़ता से मुकाबिला किया और भी बहुत से लोग मौजूद थे, किसी ने कहा—

‘हम नहीं लेते मुसलमान की जूटी औरत.’ और यह आवाज रसालू नेकीराम और चौकी कलां के बूढ़े मुहर्नर के नारों में गुम होकर रह गयी. उन सब आवाजों से अलग कालिका प्रसाद की फटी और चिल्लाती हुई आवाज आ रही थी. वह खांस भी लेते थे और बोलते भी जाते. वे इस नयी यथार्थता, इस नये सिद्धान्त के अनुयायी हो चुके थे. ऐसा जान पड़ता था जैसे आज उन्होंने कोई नया वेद, नया पुराण और शास्त्र पढ़ लिया है और अपने इस हिस्से में दूसरों को भी साझीदार बनाना चाहते हैं.

उन सब लोगों और उन सारी आवाजों में घिरी हुई लाजो और सुन्दरलाल अपने डेरे को जा रहे थे और ऐसा जान पड़ता था जैसे हजारों वर्ष पहले के श्री रामचन्द्र और सीता जी किसी नैतिक बनवास के बाद अयोध्या में प्रवेश कर रहे हों और उधर एक ओर लोग खुशी से दीपमालाओं को सजा रहे थे और दूसरी ओर उन्हें इतनी तपस्या के कष्ट के बाद फल मिलने के सुअवसर पर बधाई दे रहे थे.

लाजवन्ती के आ जाने पर भी सुन्दरलाल ने उसी परिश्रम से ‘दिल में बसाओ’ आन्दोलन को जारी रखा. जो करनी-कहनी थी, उसे निभा दिया था और उन लोगों ने जिनकी सुन्दरलाल की बातों में खाली खुली भावुकता नजर आती थी, कायल होना शुरू कर दिया.

लेकिन सुन्दरलाल बाबू को किसी की परवाह और बेपरवाही की चिन्ता नहीं थी. उनके हृदय की देवी लौट आयी थी, उनके दिल का गढ़ा भर चुका था. सुन्दरलाल ने लाजो की स्वर्ण मूर्ति को अपने मन मन्दिर में बसा लिया था और खुद दरवाजे पर बैठकर उसकी पूजा करने लगे थे. लाजो जो पहले भय से सहमी रहती थी, धीरे-धीरे सुन्दरलाल की उदारता देखकर खुलने लगी

थी.

सुन्दरलाल लाजवन्ती को अब लाजो के नाम से नहीं पुकारता था. वह उसे कहते थे, ‘देवी’.

और लाजो एक अनजानी खुशी से पागल हुई जाती थी, वह कितना चाहती थी कि सुन्दरलाल से अपनी राम कहानी कह सुनाये और सुनाते-सुनाते इतना रोये कि उसके सारे अपराध धुल जायें.

लेकिन सुन्दरलाल लाजो की वे बातें सुनना स्वीकार नहीं करते और लाजो अपने खुल जाने में भी एक प्रकार से सहमी रहती और अपनी इस चोरी में पकड़ी जाती. जब सुन्दरलाल इसका कारण पूछते तो वह, ‘नहीं, यों ही, ऊं हूं, के सिवा और कुछ न कहती और सारे दिन थके-मांदे सुन्दरलाल फिर ऊंघ जाते.

हां, शुरू-शुरू में एक बार सुन्दरलाल ने लाजवन्ती के काले दिनों के बारे में केवल इतना-सा पूछ लिया था, ‘कौन था, वह?’

लाजवन्ती ने निगाहें नीची करते हुए कहा, ‘जुम्मा.’ फिर अपनी निगाहें सुन्दरलाल के चेहरे पर जमाये हुए कुछ कहना चाहती थी लेकिन सुन्दरलाल एक अजीब-सी नजरों से लाजवन्ती के चेहरे की ओर देख रहे थे और उसके बालों को सुलझा रहे थे. लाजवन्ती ने फिर आंखें नीची कर लीं और सुन्दरलाल ने पूछा, ‘अच्छा व्यवहार करता था वह?’

‘हां’

‘मारता तो नहीं था?’

लाजवन्ती ने अपना सिर सुन्दरलाल की छाती से सटाते हुए कहा, ‘नहीं तो.’

और फिर बोली, ‘उसने मुझे कुछ नहीं कहा यद्यपि वह मारता नहीं था परंतु उससे अधिक मुझे डर लगता था. तुम मुझे मारते थे पर मैं तुमसे डरती नहीं थी—अब तो न मारोगे?’

सुन्दरलाल की आंखों में आंसू छलक आये और उन्होंने बड़ी लज्जा और दुख भरे स्वर में कहा, ‘नहीं देवी, अब नहीं मारूंगा, नहीं मारूंगा.’

‘देवी.’ लाजवन्ती ने सोचा और वह आंसू बाहने लगी.

और उसके बाद लाजवन्ती सब कुछ कह देना चाहती थी लेकिन सुन्दरलाल ने कहा, ‘जाने दो, बीती बातें. उसमें तुम्हारा क्या अपराध है. उसमें अपराध है हमारे समाज का, जो तुम जैसे देवियों को उनका पद नहीं सौंपता. इससे वह तुम्हारी हानि नहीं करता, खुद की हानि करता है.’

और लाजवन्ती की मन-की-मन में ही रही, कह न सकी सारी बात, चुपकी-दुबकी पड़ी रही अपने शरीर की ओर देखती रही, जो कि बंटवारे के बाद अब देवी का शरीर हो गया था, वह

शरीर लाजवंती का शरीर नहीं था. वह खुश थी, बहुत खुश, लेकिन एक ऐसी अजीब-सी खुशी, जिसमें आशंका और भय का पुट था, और कई बार हं-लेटी-लेटी अचानक चौंककर बैठ जाती जैसे अत्यधिक खुशी के क्षण में कोई आहट पाकर एकाएक आहट की ओर आकर्षित हो जाय.

और अन्त में जब बहुत से दिन बीत गये तो खुशी का स्थान दुख ने ले लिया. इसलिये नहीं कि बाबू सुन्दरलाल ने फिर वही पुरानी पशुता दिखायी थी बल्कि इसलिये कि वह लाजो से बहुत अच्छा सलूक करने लगे थे—ऐसा सलूक जिसकी लाजो को आदत नहीं थी. वह सुन्दरलाल कर वही पुरानी लाजो हो जाना चाहती थी जो गाजर से लड़ पड़ती और मूली से मान जाती. किन्तु अब लड़ाई का सवाल ही नहीं था. सुन्दरलाल ने उसे यह अनुभव करा दिया कि जैसे वह लाजवंती कांच की कोई चीज है, जो छूते ही

टूट जायेगी—और लाजो दर्पण में अपने को सिर से पांव तक निहारती और अन्त में इस निर्णय पर पहुंचती कि वह और तो सब कुछ हो सकती है पर लाजो नहीं बन सकती...वह बस गयी, पर उजड़ गयी...

सुन्दरलाल के पास उसके आंसू देखने के लिये न आंखें थीं न आहें सुनने के लिये कान. मुहल्ला मुल्ला शकूर के सबसे बड़े सुधारक खुद भी न जान सके कि मनुष्य का हृदय कितना कोमल होता है. प्रभात फेरियां निकलती रहीं और रसालू और नेकीराम के साथ मिलकर वे एक मशीनी आवाज में गाते रहे—

‘हथ लायांकुमलान नी लाजवन्ती दे बूटे.’

□□

लघुकथा

बेटे की नहीं बहू की मां

सरोज गुप्ता

रचना जी आंगन में बैठी धूप सेंक रही थीं. तभी अचानक मिसेज वर्मा अंदर आई. ‘अरे, पुष्पा बहन, बड़े दिन बाद दर्शन दिए.’ रचना जी ने खड़े होकर उनका स्वागत करते हुए कहा और फिर कुर्सी उनकी ओर बढ़ा दी.

पुष्पा जी ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा— ‘बहन, घर से निकलना आसान है क्या? कोई न कोई काम लगा ही रहता है. इसीलिए अब सोचा कि दो-चार दिन के लिए घर के इन झंझटों से बाहर निकला जाए.’

‘पुष्पा बहन! क्या मतलब है तुम्हारा? मैं कुछ समझी नहीं.’

‘रचना जी, गली की कुछ महिलाओं ने मिलकर हरिद्वार तथा बद्रीनाथ जाने का प्रोग्राम बनाया है. कुल 6 दिन का टूर है. रमा और विद्या के पति भी जा रहे हैं. इसीलिए आपसे पूछने आई हूं कि आप भी चलेंगी न? अरे, ऐसे अवसर रोज-रोज थोड़े ही आते हैं. ऐसे तीर्थों के दर्शन तो भाग्य से ही होते हैं.’ पुष्पा जी ने पूरे उत्साह से अपनी बात रखी.

‘आपकी बात बिल्कुल ठीक है पुष्पाजी. वास्तव में यह बहुत अच्छा मौका है. बद्रीनाथ जी के दर्शन की तो स्वयं मेरी बड़ी इच्छा है. मगर...’

‘तो अड़चन क्या है?’ पुष्पा जी उनकी बात काटते हुए पूछा. ‘बात यह है कि इस समय मेरा जाना संभव नहीं है. आप तो जानती हैं कि पिछले चार साल से मेरा बेटा और बहू सिंगापुर

में हैं. सात साल की एक पोती है. इतने सालों बाद अब दूसरा बच्चा घर में आने वाला है. बहू की डिलीवरी इसी माह होने वाली है. बस दो-चार दिन में बेटा मेरा जाने का प्रबंध करके मुझे फोन कर देगा. अब देखिए वहां जाना तो सबसे जरूरी है. दो महीने तो मुझे वहां रुकना ही पड़ेगा. भाग्य में हुआ तो फिर कभी बद्रीनाथ जी के दर्शन अवश्य करने जाऊंगी.’

‘चलिए यह तो खुशी की बात है. भगवान करे कि जल्द ही आपको पोते की खुशखबरी सुनने को मिले.’ कहकर पुष्पाजी चली गई.

तीन दिन बाद बेटे का फोन आया—‘मां! तुम शायद यहां आकर इतना काम संभाल न पाओगी. इसलिए मैंने इन्दु की मम्मी का टिकट भेज दिया है. वो 18 तारीख को सिंगापुर आ रही हैं. कुछ जरूरी सामान बता रहा हूं. ये चीजें विनय के हाथों दिल्ली भेजवा देना ताकि वे ले आए. आप किसी बात की चिंता बिल्कुल मत करना. बस खुशखबरी का इंतजार करें.’

रचना जी सिर पकड़ कर बैठ गई. लगा जैसे दूध के उफान पर पानी पड़ गया हो. फिर तुरंत उन्होंने पुष्पाजी को फोन लगाया ‘मिसेज वर्मा! बस में कोई सीट खाली है क्या?’

‘जी हां! एक सीट अभी खाली है.’

सम्पर्क: 817/5 पटेल नगर,
गुड़गांव-122001 (हरियाणा)

मो: 08010859488

□

हितैषी

आशापूर्णा देवी

चार वर्ष की कच्ची उम्र से जब घण्टू बाबा आदम का शिष्य था, उसी समय से उसने रोजगार पकड़ा था.

चाहे उससे दो-तीन पैसे की जुटते हों, रोजगार तो था!

बस्ती के सारे बच्चे हाथ में टोकरी लेकर कोयला चुनने रेल लाइन के किनारे दौड़ जाते, घण्टू भी उनके पीछे-पीछे दौड़ता. उसकी कमर में बंधे तागे से लटका लाम्बे का पैसा नाचता रहता था साथ-साथ. बस्ती के ही कुछ लोग, जिनकी हालत इनसे थोड़ी अच्छी थी, यानी जो कमाऊ तो थे पर धनी नहीं थे, वे दो-चार पैसे देकर इनसे कोयला खरीद लेते. और खरीदती थीं आस-पास के गरीब गृहस्थ घरों की स्त्रियां. वे लावन के नाम पर पति से पैसे लेतीं मगर काम इन पथरीले और अधजले कोयले से चलाकर कुछ पैसे बचा लेती.

घण्टू को प्रायः सभी पसन्द करते; क्योंकि कोयला चुनने में वह बड़े बच्चों से कम नहीं था, मगर हिसाब लगाने में एकदम बुद्धू.

एक बासी रोटी या दो सूखी डबल-रोटी के टुकड़े के बदले ही एक टोकरी कोयला उंडेल देता.

कुछ लोग अपने विवेक का गला घोटकर लेन-देन का हिसाब बैठा लेते लेकिन जिसमें थोड़ा भी विवेक बाकी रहता, वे कहते हैं, “क्यों रे घण्टू, जा रहा है? कोयले का दाम नहीं लेगा?”

घण्टू अकारण दांत निपोरकर हंसता हुआ कहता—“हिः..”

दो, तीन—जिसे जो सही लगता, उतने पैसे दे देता.

पैसे मिलते ही घण्टू दौड़ जाता भूँजावाले की दुकान पर.

उन गृहस्थ स्त्रियों में ही किसी ने एक दिन एक फटा हुआ हाफपैण्ट देकर उससे कहा, “ऐ घण्टू, इसे पहन ले. छिः, इतना बड़ा लड़का नंगा ही घूमता है, शर्म नहीं आती?”

शर्म का एहसास अबतक उसे था ही नहीं. मगर इस प्रश्न को सुनकर घण्टू के चेहरे पर शर्म की लाली फैल गयी. सर झुकाकर बोला, “बुढ़िया देती ही नहीं..”

“अच्छा, मैं दे रही हूँ, ले ले.”

घण्टू ने हाफपैण्ट ले लिया और काफी संघर्ष कर पहन भी लिया. दोनों पांव एड़ी को छूने लगे और कमर को एक कपड़े के टुकड़े से बांधना पड़ा. फिर भी घण्टू की खुशी का पारावार नहीं था.

सभ्यता की ओर यही उसका पहला कदम था.

बुढ़िया कहकर जिसे घण्टू धिक्कार रहा था वह उसकी दादी थी. बेटा-बहू दोनों चल बसे थे. और पोता उसके लिए एक बला से अधिक नहीं था. उसका परिवार, उसकी बेटी और बेटी के बच्चों से ही बनता था. बड़ी दया करके वह सुबह-शाम दो मुट्ठी अन्न उसके आगे डाल देती. घण्टू के लिये उतना ही पर्याप्त था.

सारे बदन पर काई-सी जमी रहती थी, दांतों पर धब्बे, बहते हुए कान-मगर घण्टू का जीवन मजे में कट रहा था. अब हॉफ पैण्ट पहनकर खुशी और बढ़ चली थी. अपने को तीसमारखां समझने लगा.

धीरे-धीरे हॉफ पैण्ट उसकी चमड़ी पर जमकर बैठ गया.

पता नहीं कैसे क्या हुआ, एक दिन घण्टू हॉफ पैण्ट पहने इटला रहा था कि उसकी बुआ फूलमणि को उसके रोजगार का ख्याल आया. बस लगीं उसके कान जोर से खींचकर पूछने, “ए छोरा! कोयले के पैसे का क्या करता है रे?”

आं, आं कर अपने कान वापस खींचते हुए घण्टू बोला, “मारती क्यों हो? झाल चना खाता हूं.”

“मारूं नहीं? तो पूजा करूं? राक्षस जैसे थाली भर-भर कर दिन में दो बार खाता है फिर भी पेट की आग नहीं बुझती? मुफ्त का भात आता है क्या? कल से पैसे लाकर मुझे देना.”

“नहीं.” गर्दन झुकाकर घण्टू बोला.

मगर इधर जवाब निकला उधर बुआ का एक और थप्पड़! उसकी झुकी गर्दन सीधी हो गयी.

“अरे! मुंह पर जवाब भी देने लगा है? कल से मत खाना. मैं भी देखती हूं दादी कितने प्यार से खिलाती है.”

कहने की जरूरत नहीं इस जिद की लड़ाई में हार गया घण्टू. एक दिन भोजन नहीं मिला तो चकराकर गिर गया वह. भूँजावाले की दुकान वह कमी पूरी न कर सकी. बुआ के आगे स्वीकार करना पड़ा कि कोयले के पैसे वह मुड़ी-चने खाकर बर्बाद नहीं करेगा बल्कि सारे पैसे बुआ के हाथों में लाकर दे देगा.

मगर अगले दिन सुबह “तू शैतान है, तेरा क्या भरोसा.” कहकर बुआ ने अपनी दस वर्षीया बेटी को चौकीदारी करने के लिये घण्टू के पीछे भेज दिया. कोयला वह भी चुनती थी पर

वाचाल हो गयी थी. इसलिये बस्ती के तेरह-चौदह वर्ष के लड़कों के साथ चक्कर काटती थी. ममेरे भाई पर उसका ध्यान नहीं जाता था. मां का निर्देश पाकर घण्टू की निगरानी के बहाने उसकी अभिभाविका बन बैठी.

अपने साथ घण्टू को लेकर घर-घर जाती, आसपास की बहुओं के साथ कोयले का मोलभाव करती और याद दिलाती रहती कि घण्टू को बुद्धू समझ अब तक लोग उसे लूटते रहे. जब दाम न जंचता तो घण्टू को लेकर झटके से बाहर आ जाती.

परिणाम यह हुआ कि अब तक जो एक-दो बासी रोटी, सूखी डबल रोटी के टुकड़े, दो मीठी बातें नसीब होती थीं वह भी बन्द हो गयीं. जो पहले प्यार दिखाते थे वे बोलने लगे, “देखो इस छोरे को. खुद से नहीं बन पड़ा तो लड़ने के लिये एक सरदार पकड़ लाया है.”

घण्टू के सुख के दिन लद गये.

अब पहले जैसा स्वच्छन्द विचरण बन्द हो गया, अपनी मर्जी से काम पर जाना बन्द हो गया. अब सवेरा हुआ कि बड़ी-सी टोकरी लेकर निकलना पड़ता और दिन भर काम करना पड़ता. जरा अनमना होकर रेलगाड़ी का आना-जाना देखने लगा या किसी गाय के पीछे-पीछे ‘हट-हट’ कर दौड़ा या पल-दो पल पैर पसारकर बैठ गया कि फुफेरी बहन बतासी दो-चार हाथ जड़ देती.

बांस से दबिया तगड़ी होती है. धूप से तेज होती है बालू की गर्मी.

बुआ की भारी हथेली के थप्पड़ से उसकी बेटी की छोटी-सी हथेली की मार ज्यादा पीड़ा छोड़ जाती.

उस पीड़ा से पीड़ित एक दिन घण्टू की अक्ल का दरवाजा खुल गया. सोचा उसने—‘मैं किसका हूँ? कौन है मेरा? दो जून भात के लिये अगर पैसे ही देने पड़ें तो दादी और बुआ के पास क्यों पड़ा रहूँ? बतासी की गुलामी अब और नहीं.’

इसलिये एक दिन बतासी के देखते ही देखते चलती हुई ट्रेन पर उछलकर चढ़ गया घण्टू.

लोकल ट्रेनें अकारण ही जब-तब यहां-वहां रुक जाती हैं. शरारती बच्चे इन्हीं गाड़ियों से आना-जाना करते हैं. यह कोई नई बात नहीं है. मगर जब गाड़ी चल पड़ी और घण्टू उतरा नहीं तब बतासी फटे बांस के से स्वर में चीख उठी, “अरे मुंहजले, नालायक उतर आ, गाड़ी चलने लगी है.”

घण्टू डरा नहीं. बतासी चिल्लाने लगी, “लौटेगा तो पता चलेगा, क्या हाल करती है मां तेरा, तुझे यम-द्वार पहुंचाकर

रहेगी.”

इतने डराने-धमकाने का भी घण्टू पर कोई असर नहीं हुआ बल्कि यह खिड़की से बाहर मुंह निकालकर अपनी जीभ और अंगूठे दिखाकर बतासी को चिढ़ाने लगा. उसी पल बतासी समझ गयी कि घण्टू अब वापस नहीं आएगा.

हां! फिर वह अपने जन्मस्थान पर वापस नहीं लौटा. महज सात वर्ष का घण्टू निरंकुश, स्वाधीन हो गया.

स्वेच्छानुसार मनचाहे स्टेशन पर उतर गया.

स्टेशन का नाम मालूम नहीं था और मालूम करने की इच्छा भी नहीं थी. किसी दिन चाय की दुकान से मांग कर थोड़ी-सी चाय-रोटी खा लेता तो कभी स्टेशन के होटल के पास जाकर घण्टों खड़ा रहने पर बचा-खुचा कुछ मिल जाता.

फिर भी बड़ा खुश था.

रोज-रोज टोकरी लेकर कोयले चुनने के लिये दौड़ना तो नहीं पड़ता. दादी, बुआ और बतासी की डांट तो नहीं सुननी पड़ती. यह कोई छोटा-मोटा सुख था क्या?

इस सात वर्ष की उम्र में ही दिव्य ज्ञानी घण्टू समझ गया कि सर के ऊपर किसी ऊपरवाले का न होना ही चरम सुख है.

मगर सुख की अनुभूति क्षणिक ही होती है.

इस दुःखमय धराधाम पर सुख जैसे नश्वर चीज और है भी क्या?

स्टेशन पर चाय का दुकानदार एक दिन उसे बुलाकर अकारण की बरस पड़ा, “क्यों रे? रोज-रोज मुफ्त की रोटी तोड़ेगा क्या? कुछ काम-धाम किया कर.”

खाने को कुछ खास मिलता नहीं था, इसलिये मुंह चिढ़ाकर घण्टू बोला, “एः, बड़ा खिलाता है. ओ-हो-हो.”

दुकानदार चिढ़कर बोला, “अरे, मेरे बाप-दादा-चौदह पुरखों के गुरुवंश का नाती है तू. मैं मर जाऊं. तुझे पेट भर खाना नहीं दिया? अहा-हा-हा. बोल क्या दूं तुझे?”

घण्टू के लिये यह शब्द नये थे. इसलिये उसने चिढ़कर जवाब दिया, “सुबह-शाम भात खाने को दो तो मैं काम कर सकता हूं.” दुकानदार ने सोचा, बुरा ही क्या है.

पैसे की बात तो की ही नहीं छोकरे ने, शायद मालूम ही नहीं. सिर्फ दो बार खाना देना और बदले में चाय के बर्तन धोना, केतली मांजना और पान लगाना. दिन-रात काम लिया जा सकेगा.

उसने घण्टू के हाथ में साबुन की टिकिया थमा दी और एक नयी गंजी और नया पैण्ट लाकर दिया.

साबुन से नहा-धोकर नये कपड़े पहनकर घण्टू जिस दिन दुकान के नीचे स्टूल पर पैर लटकाकर बैठा, उसे लगा वह बादशाह है इस दुनिया का.

काम भी बुरा नहीं था.

कम-से-कम कोयला चुनने से तो सौ-गुना अच्छा था.

केवल दो जून क्यों, दिन में चार बार खाने को मिल जाता था. काम बहुत करता था. इसलिये डांट भी कम पड़ती थी. एक तरह से कहा जाए तो हालत पहले की अपेक्षा सुखद ही थी.

मगर वही...

वही सुख की नश्वरता!

नसीब फूटा. एक और चायवाला बहकाने लगा उसे, “बिना मजूरी के काम क्यों करता है रे?”

घण्टू स्टूल पर बैठकर पैर नचाते-नचाते बोला, “मजूरी लेकर क्या कसंगा? सब कुछ तो मिल ही जाता है.”

“अरे बुद्धू, सब मिल जाता है, इसलिये वैसे ही मेहनत करेगा?”

“ठीक ही तो है.”

“अभी तो ठीक है. मगर किसी दिन नौकरी से निकाल दे तो तेरे हाथ में रहेगा क्या? हवा फांकेगा?”

“क्यों निकाल देंगे भला?”

“लो! क्यों निकाल देंगे? अरे बाबा, स्वर्ग से टपका है क्या? अरे! जब चीजों के दाम बढ़ेंगे तो तुझे खिलाना भारी पड़ जाएगा.”

“ठीक है, मांग लूंगा.” कहकर फिर पैर नचाने लगा घण्टे.

मगर मजूरी मांगते ही हालत बिगड़ गयी. आराम हवा हो गया. मालिक ने उसकी खूब पिटाई की और धमकाया, “देख लूंगा मैं भी कौन तुझे यहां पचास रुपये पगार देकर रखता है.”

घण्टू की मांग सिर्फ पांच रुपये की थी यह उसके मालिक को याद नहीं रहा. स्टेशन के सारे लोग तमाशा देखने लगे. उनमें वह भी खड़ा ‘हि-हि’ हंस रहा था जिसने उसे बहकाया था.

फिर रेलगाड़ी पर चढ़ बैठा घण्टू.

बिना टिकट पहले बच गया था मगर इस बार चैकर ने पकड़ लिया. चैकर घण्टू का चेहरा देखते ही भांप गया कि इससे कुछ मिलना नहीं है. शायद इसीलिये उसने घण्टू की गर्दन पर दो मुक्के रसीद कर दिए फिर पूछा, “काम करेगा?”

घण्टू होशियार हो चुका था, इसलिये बोला, “कसंगा, मगर पगार देनी पड़ेगी.”

“अरे बाप रे! ये तो लगता है वैसा ही है—जहर का पता नहीं सूप जैसा फन फैला रहा है. मैंने कब कहा कि बिना पगार के

काम कराऊंगा? कितनी देनी होगी-सो? दो सौ?”

“पांच रुपये तो देंगे न?”

चैकर को लगा, लड़का काफी काम आएगा. वह खुश हो गया. उसके साले साहब के घर नौकर की तकलीफ थी. उसने कान पकड़कर घण्टू को उसके सुपुर्द कर दिया.

साले साहब भी रेल के कर्मचारी थे. छोटा-सा रेल-क्वार्टर था, ऊपर-नीचे का झमेला नहीं था. काम भी हल्का था. उनकी पत्नी कोमल स्वभाव की थी. चार बार ही क्यों, अपने बच्चों के साथ सात बार खिलाती. वे जो कुछ भी खाते, घण्टू को भी दिया करती.

अच्छी कमीज ओर धोती खरीदकर दी थी. बिस्तर, मच्छरदानी, सब दिया था. घण्टू मानों सातवें आसमान में विचर रहा था.

महीने के अंत में पगार के पांच रुपये पाते ही उसके सारे दांत बाहर निकल आए. उसे लगा जैसे कोई लॉटरी लग गयी है. अब पाने को बाकी ही क्या था.

मगर रुपये लेकर वह करे भी तो क्या? पैसे तो खाने पर खर्च हो सकते थे और खाना तो उसे हरदम मिलता रहता था. इसलिये वह मालकिन से बोला, “ये रुपये आप ही रख दीजिए.”

“मैं क्यों लूं? तेरे पैसे तू नहीं लेगा?”

“धत्! मैं कहां रखूं? हवा में उड़ जाए या चूहा चट कर जाए, क्या ठिकाना.”

मालकिन ने हंसते-हंसते पैसे उठाकर रख दिये. पड़ोस में सबको घण्टू की सरलता की कहानी सुनाई-“कहता है, रुपये हवा में उड़ जाएंगे या चूहे चट कर जाएंगे.”

इस तरह तीन महीने बीत गये.

विधाता ने फिर एक हितैषी को घण्टू के पास भेजा. पड़ोस में किसी और के घर का नौकर था वह.

उसने पाठ पढ़ाना शुरू किया-“मूर्खों का सरदार है तू. तुझे तो गिनना भी नहीं आता. पता भी है कितने महीने के रुपये जमा होकर कितने होते हैं?”

घण्टू लट्टू नचाते-नचाते बोला, “मां जी को पता है.”

“मां जी को पता रहने में हो गया? कितने महीने से वहां काम कर रहा है तू?”

“क्या पता!” उस समय थोड़ी-थोड़ी सर्दी थी.

“क्या बात है. सुन मेरी बात-जा, अपने पैसे मांग ले. कहना-मेरे हिसाब के पैसे दे दो. मैं अंगूठी बनवाऊंगा.”

“अंगूठी?”

घण्टू को लगा जैसे वह स्वर्गलोक का गीत सुन रहा हो. खुशी से झूमकर एक चक्कर घूम गया और बोला, “कहां है अंगूठी,”

“अरे बुद्धू. कहां होगी अंगूठी? सुनार की दुकान पर और कहां! तू मां जी से पैसे लाकर मुझे दे, मैं खरीदकर ला दूंगा. लेकिन खबरदार! मेरा नाम मत लेना.”

निषेधवाणी भूला नहीं घण्टू. बिना कोई नाम लिये अपने पैसे मांग बैठा.

“अंगूठी खरीदूंगा, पैसे दो.”

मालकिन हंस पड़ी. बोली, “अंगूठी क्यों रे? कौन बहका रहा है तुझे?”

“मुझे कौन बहकाएगा? अंगूठी पहनने का मन हुआ! बस!”

“देख घण्टू, तू न तो सोना पहचानता है न दाम जानता है. जरूर कोई तुझे ठगने की कोशिश में है. किसी की बातों में न आना. अंगूठी लेनी है तो बाबू खरीदकर ला दौंगे.”

बाबू के खरीदने वाली बात बहुत दूर की लगी घण्टू को. अभी होता तो ठीक होता. अपनी उंगली घुमा-फिराकर देखने लगा वह. फिर धीरज रखना कठिन हो गया.

वह क्रोध में बोल उठा, “इसका मतलब आप मुझे पैसे देना नहीं चाहती? ठगना चाहती हैं?”

इसके बाद मालकिन का हितैषी बनना मुश्किल हो गया. वे गम्भीर हो गयी. पन्द्रह रुपये गिनकर उसके आगे फेंक दिये.

घण्टू झूमता हुआ निकल गया.

अंगूठी पहनकर शाम को ही वापस आया. हाथ फैला-फैलाकर दिखाते लगा तो मुंह फुलाकर मालकिन ने कहा, “बहुत अच्छा हुआ.”

यह भी नहीं कहा कि यह तो पीतल की है. मगर घण्टू के लिये सोना क्या और पीतल क्या?

अगले महीने उसने दस रुपये पगार की मांग की.

मालकिन का मिजाज ठीक नहीं था और समझ रही थी कि बहकावे में आकर लड़का बिगड़ रहा है. उन्हें गुस्सा आ गया-“दस रुपये क्यों देने लगी रे?”

घण्टू बोला, “क्यों नहीं देगी? सभी घर में दस-बाहर रुपये देते हैं आप ही मुझे बेवकूफ बनाकर ठगती हैं.”

वे समझ रही थी कि कोई घण्टू को बहका रहा है फिर भी अपने को आपे में रखना उनके लिये मुश्किल हो गया. बोली, “जा निकल जा अभी और इसी वक्त चला जा जहां पचीस रुपये पगार मिले. सात बार खाने को दें दिन-रात पतंग उड़ाने, लट्टू घुमाने दें, कंचे खेलने दें. ऐसा घर ढूढ़ ले जाकर.”

जो उसे बहका रहा था उसने एक नौकरी का इन्तजाम कर दिया मगर दो दिन काम करके ही भागना पड़ा. उनका काम उसकी बारह वर्ष की हड्डी सहन नहीं कर सकती थी. दरवाजे-दरवाजे घूमकर एक दिन वह जगह भी छोड़नी पड़ी उसे और पहली बार उसकी आंखों से आंसू छलक आये.

इसके बाद घण्टू को घाट-घाट का पानी पीना पड़ा हितैषियों के चक्कर में. फिर एक दिन जब पाई-पाई को मोहताज हो गया तो अपनी अंगूठी बेचने गया. पीतल को सोने के भाव बेचने की कोशिश में पकड़ा गया और जेल गया. यहां तक था उसका बाल इतिहास.

बड़े दिनों बाद फिर दिखाई दिया वह कोलकाता की सड़कों पर फल बेचते हुए. लम्बा-चौड़ा, गठीला नौजवान, चौड़ी छाती देखकर कोई सोच भी नहीं सकता, कितना दुःखद रहा होगा उसका बचपन. शायद सभी निर्दयी थे. इसीलिये यौवन उस पर कुछ अधिक ही सदय था.

अब जाकर आदर्श जीवन मिला है घण्टू को. आजीवन उसने इसी जीवन की कामना की थी. कोलकाता शहर में तो नाली की कीचड़ बेचकर भी पैसे मिलते, सो फल बेचकर अच्छा-खासा कमा लेता था वह.

दैनिक खर्चा देकर घण्टू होटल में खाता, जब मर्जी सिनेमा देखता, ताश के पत्तों पर जुआ खेलता, सड़क के नल पर नहा लिया करता और रात को किसी बड़े घर के 'पोर्टिको' के नीचे सो जाता था.

इससे आदर्श जीवन और हो भी क्या सकता था? घण्टू के होंठों पर या तो बीड़ी होती या फिल्मी गीतों के बोल होते थे.

जब जी करता, धन्धा छोड़कर वह सड़कों के चक्कर काटता. उधार में भोजन, पान-बीड़ी सब मिल जाता था.

हां, उधार सभी देते थे उसे.

वह था भी दरिया-दिल. छः पैसे का पान खाता और दस पैसे फेंक देता. एक रुपया तीन आने का परांठा खाकर सवा रुपये तो हमेशा ही दे देता था, उधार देता तो कभी वापस नहीं मांगता था.

ऐसे फुर्तीले बेपरवाह नौजवान से सभी प्यार करते थे.

मगर हां, एक मामले में घण्टू बहुत होशियार हो गया था. किसी हितैषी के चक्कर में नहीं पड़ता था.

सब कुछ लुट जाए फिर भी किसी को अपने ऊपर हुकूमत नहीं करने देता था वह.

ताश के अड्डे पर एक यार ने बड़ी कोशिश की थी पट्टी

पढ़ाने की. पैसे लगाकर रोजगार बढ़ाने को प्रेरित किया. कहा था, “रुपये पर रुपया सूद. सुबह-शाम रुपये अण्डे देगा, बच्चे देगा. पैसे लेगा, दुगुना करके वापस ला दूंगा. सूद पर देगा तो दस दिन में दस रुपये के सौ मिल जाएंगे.”

मगर घण्टू अटल रहा. बोला, “नहीं यार, ऐसे ही ठीक हूं, अण्डे-बच्चे की जरूरत नहीं. मुझे दस के सौ नहीं करने.”

मजे में था, मिलता तो खाता, नहीं मिलता फाका करता. फिर भी मस्त था.

मगर अचानक एक दिन उसकी मस्त जिन्दगी को किसी की नजर लग गयी. उसे सब कुछ बेकार लगने लगा.

क्यों रोज-रोज फल बेचने निकले घण्टू, क्यों होटल में जाकर खाना खाये, क्यों ताश खेलकर हारे या जीते? और शाम होते ही सिनेमा हाल में क्यों जाए या गुनगुनाते हुए सड़कों पर क्यों घूमता फिरे?

अब तक जिन बातों से चरम सुख प्राप्त होता था अब वही सब अर्थहीन लगने लगीं. देखने में तो कारण सामान्य जैसे थे.

रोज सड़क के पार जिस नल पर घण्टू नहाने जाता, उसी नल को रोककर एक लड़की बैठी रहती. घण्टू का भी रोज का काम था नल पर जाना और नल रोकना उस लड़की का. वह वहां बर्तन मांजती, कपड़े धोती और बड़े कौशल से साड़ी में लिपटकर नहा भी लेती.

घण्टू कुछ दिन तो सहन करता रहा, लेकिन एक दिन उससे रहा नहीं गया. बोला, “ये तो अच्छा तमाशा है? नल का ठेका ले लिया है क्या? सिर्फ तुम्हें ही काम है और किसी को कोई काम नहीं?”

लड़की इस हमले से रत्ती भर भी नहीं घबरायी. गर्दन घुमाकर, आंखों से बिजली चमकाकर बोली, “क्या काम है और किसी को? न बीवी, न बच्चा, न घर-बार, दो घण्टे रुक भी गये तो क्या आसमान टूट पड़ेगा?”

बरसों पहले एक बार घण्टू की आंखों में आंसू छलके थे. आज पता नहीं क्यों, फिर आंखें भर आयीं. शायद एक नारी से टक्कर लेने का अनुभव नहीं था, इसलिये असहाय महसूस करने लगा. जो जीवन उसे परम-प्राप्ति का आनन्द देता आज उसी पर किसी के उठाये सवाल ने उसे जबर्दस्त तकलीफ से भर दिया.

खैर मन में जो भी हो, आंखों में रोष लेकर घण्टू फड़क उठा, “और तुम्हारे पास सबकुछ है क्या?”

लड़की के चेहरे पर अवज्ञा और भी स्पष्ट झलकने लगी. बोली, “है क्यों नहीं? मां है, बाप है, भाई-बहन हैं.”



घण्टू ने मुंह चिढ़ाकर कहा, “है तो मैं क्या करूं? मेरा कोई नहीं है तो तुझे क्या?”

“मेरा क्या? लोग हंसते हैं, बुरा लगा है. एक नम्बर का बुद्धू है तू. दोस्त बाजी में हराकर तुझे ठगते हैं, उधार लेकर वापस नहीं करते, छिः!”

बस, यही बात घर कर गयी.

सोचो तो यही कारण, नहीं तो कुछ भी नहीं.

उसी दिन से गुमसुम है घण्टू.

जो घण्टू कभी दोस्तों के लिये सबकुल लुटा सकता था, वही दोस्तों की इस निष्ठुरता से टूट गया. अब ताश के अड्डे से बुलावा आता तो घण्टू ‘तबीयत ठीक नहीं’, कहकर टाल जाता. वे उधार मांगते तो घण्टू कहता पैसे नहीं हैं.

वे कहते, “हुआ क्या हमारे घण्टू को?” खुद घण्टू को ही नहीं पता क्या हो गया? हां, मगर फिल्में अच्छी नहीं लगती,

गुनगुनाना भी बन्द हो गया. कभी होटल जाता तो कभी नहीं.

सिर्फ नियमानुसार प्रतिदिन सुबह फल बेचने निकल जाता और धीरे गति से. गांठ में बंधी पैसों की थैली मोटी होती जाती दिन-प्रतिदिन. क्यों न होगी? अब रुपया सिर्फ आता था, जाता तो था नहीं.

मगर उससे क्या?

जीवन ही जब असार लगे तो पैसों से क्या लाभ.

जब वह लड़की नल के पास होती, घण्टू उधर फटकता भी नहीं, जबकि उसका सम्पूर्ण अस्तित्व चुम्बक की तरह नल की तरफ ही आकर्षित होता रहता. अपनी मनःस्थिति को समझ पाने में असमर्थ घण्टू दिन-प्रतिदिन सूखकर कांटा होने लगा.

ऐसे में अचानक एकदिन वह लड़की आयी और कंटीली भौंहे तान कर बोली, “ऐ! नल पर क्यों नहीं आता? नाराज है, मुझसे?”

घण्टू ने सिर हिलाया.

“फिर?”

फिर क्या, यह न बताकर अचानक घण्टू ने एक अजीब हरकत कर दी. कमर में बंधी रुपयों

की थैली निकालकर उसके हाथ में दे दी और कहा, “ले.”

वाचाल लड़की पहली बार सहम गयी. डर कर थैली फेंक दी उसने.

दो कदम पीछे हटकर घबरायी आवाज में बोली, “तेरे पैसे मैं क्यों लेने लंगू?”

जमीन से थैली फिर उठाकर घण्टू निहाल-सा होकर हंसकर बोला, “ऐसे ही क्यों लेगी, बदले में जो मेरे पास नहीं है, वह दे दे-घर-परिवार, बीबी. और इस बुद्धू की हितैषी बन जा ताकि फिर कोई इसे लूट न सके.”



□□

गाओ बिटिया गाओ

उज्जवला केलकर

मधु बगीचे में पौधों को पानी दे रही थी। रजनीगंधा की क्यारियों के पास आज एक डंडा उमड़ा है। सर पर शान से हरा भरा मुकुट पहना हुआ हरा डंडा। ये डंडा 'मे पुष्प' का है। मुकुट में हजार के आस-पास छोटी-छोटी कलियां जुड़ी हैं। कल तक तो यहां कुछ भी नहीं था। आज देखो कैसे ये कलियां आंखें मूंदकर एक दूसरे से आलिंगनबद्ध बैठी हैं। कल इनकी कोख से गुलाबी केसर अपने सिर पर परागों का सुनहरा-पीला मुकुट पहने हंसेंगे। परसों अंदरवाली कलियां खिलेंगी। नरसों उसके अंदर की एक और परत खिलेगी और चार पांच दिनों के बाद अंदर ही अंदर पांव फैलाना शुरू करेगा। लातें मारने लगेगा। फिर इधर-उधर करवटें लेने लगेगा और फिर एक दिन पेट से बाहर आकर गोद में लेटेगा। चूचुक-चूचुक करके मेरे थन का दूध चूसेगा। मेरे गले में हाथ डालकर मुझे चूमने लगेगा। मधु का मन यकायक उत्तेजना से भर आया।

पौधों की सिंचाई हो गई। उसके बाद मधु ने पाइप से पूरे आंगन में पानी छिड़क दिया। तृप्त मिट्टी का हर कण खिल गया। सुगंध की लहरें उमड़ कर उसकी नाक तक पहुंच गईं। एक लम्बी सांस लेकर उसने उन गंध लहरों को अपने सीने में भर लिया। उस सुगंध से वह और भी उत्तेजित हुई। उसके गले से अपने आप स्वर झरने लगे। सुर-तान सुरों के आवर्तनों के साथ वह भी पेड़-पौधों में तितलियों की तरह विहरने लगी। अब सुर शब्द मिल गए- 'केतकी गुलाब जुही चंपक बन फुले...' गाते-गाते वह अंदर चली गई। पीछे बाल्कनी में खड़ी बगीचे की तरफ निहारती वह गाती रही। आलाप तानों के झूले झुलने लगे।

साधना घर आ गई, पर मधु का ध्यान उसकी ओर नहीं गया। वह गा रही थी। सुरों का झरना अविरत झर रहा था। साधना दंग रह गई। कितने दिनों के बाद उसकी लाडली बेटी गा रही थी। खुले दिल से गा रही थी। पर आज अचानक यह क्या हो गया? बरसों से उसने अपने होंठों पर ताला लगाया था। अपने सुमधुर गले पर अन्याय किया था। न गाने की कसम खाई थी।

मधुवंती की आवाज बड़ी मधुर और सुरीली थी। भगवान ने ही उनके गले में सुर रख दिया था। ताल-सुरों का पक्का ज्ञान...यह तो प्रकृति की ही देन थी। स्कूल में पढ़ते समय से गाने के कितने ही पुरस्कार उसने हासिल किए थे। उसके जन्म से ही उसे बड़ी

गायिका बनाने का सपना निरंजन और साधना ने देखा था. 'पहली बेटी... सुर की पेटी...' निरंजन अक्सर कहता. मधुवंती उसकी लाडली बेटी थी. रियाज के समय उसे गोद में बिठाकर गाने वाला निरंजन दुनिया की सुधबुध खो बैठकर गाता ही रहता... गाता ही रहता. अनूप मधु से दो साल छोटा. उसे एक जगह बैठकर आलाप-तानों का रियाज करना पसंद नहीं था. उसे तो दस मिनट तक एक जगह बैठना ही मुश्किल लगता. मीठी बातें, पुचकारना, गुस्सा दिलाना सारे तरीके उसके बारे में आजमाए गए और सारे के सारे नाकाम रह गए. सभी तरीके आजमाकर निरंजन और साधना ने देखे, किन्तु यह चंचल बालक एकाग्रचित होकर एक जगह बैठने का नाम ही नहीं लेता. आखिर निरंजन ने उसे गाना सिखाने का अपना प्रयास छोड़ दिया और अपनी सारी आशाएं मधु पर केंद्रित की. उसे ख्यातनाम गायिका बनाकर अपने घरों की पुश्तैनी धरोहर...यह गाना अधिकाधिक संपन्न बनाकर उसके हाथों सौंपने की ठान ली.

किन्तु हाय...तकदीर को शायद यह मंजूर नहीं था. एक दिन अचानक निरंजन घर से चला गया. जाते-जाते अपने साथ मधु का गाना भी ले गया.

कोणार्क के सूर्य मंदिर में संगीत महोत्सव था. महोत्सव में गाने के लिये निरंजन घर से निकल पड़ा. बच्चों के स्कूल, साधना की बैंक, इसलिये वह उनके साथ जा न सकी. मधु का दसवीं कक्षा का महत्वपूर्ण वर्ष. निरंजन के गाने की कितनी तारीफ हुई वहां. दूसरे दिन वृत्त पत्रों में विस्तृत रिब्यू छप गया. तज्ञ संगीत समीक्षकों के साथ-साथ बुजुर्गों ने भी तारीफ के कितने ही पुल बांधे थे. उनकी साफ सुथरी, सुरीली आवाज, तान, फिरत, मीड, लोच, इस के साथ-साथ उनके गाने में दिखाई देने वाला भाव सौंदर्य, उनकी प्रयोग शीलता को भी सहारा गया. पढ़ते-पढ़ते साधना और मधु रोमांचित हो उठी. पूरा दिन मधु अपने मनःचक्षुओं के सामने गाती हुई निरंजन की छवि लाती रही. उनके बदन पर रोम-रोम खड़े करने वाला पुरिया...रंग कर रसिया आओ अब...उस दिन स्कूल में जो भी सिखाया गया, उसे कुछ भी समझ में नहीं आया. उसके सामने थी, उसके बाबू जी की गाती छवि और सुनने को आ रहा था, उनका गाना, उनके लिये हुए आलाप, ताना, मीड...उसकी सूझ-बूझ में सिर्फ यही था.

दूसरे दिन साधना बैंक से लौटी तो उसे निरंजन की लिखी हुई चिट्ठी मिल गई. 'अच्छा! तो ये कोणार्क से सीधे घर लौटने वाले नहीं...लगता है और कहीं महफिल जमाकर आ जाएंगे. कितनी बार कहा, इस तरह के बीच-बीच में मिलने वाले निमंत्रण को स्वीकार न करो. अपने स्वास्थ्य का भी कुछ ख्याल करना चाहिए ना आदमी को...' ऐसे बड़बड़ाते साधना ने लिफाफा खोल दिया. चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते साधना मानो बुत बन गई. निरंजन ने

लिखा था, साधना पिछले एक साल से मैं एक तूफान में फंसा हूं. घर गृहस्थी या संगीत? मुझे राह नहीं दिखाई देती थी. लगता था, मेरे इर्द-गिर्द घना कोहरा छाया है और मैं सांस भी नहीं ले पा रहा हूं. अपने मन से काफी दिनों तक झगड़ा करके मैंने संगीत की राह पर कदम बढ़ाए हैं. प्रज्ञा मेरा साथ देगी. मेरे लिये उसने कब से अपना घर-बार छोड़कर मुझे साथ देने का ठान लिया था. मैं ही निर्णय नहीं कर पा रहा था. आखिर तक रहूंगा. तुम्हारी ही वजह से मेरे जैसे कलंदर का घर बसा. घर-गृहस्थी के लिये तुम्हें अपना गाना छोड़ना पड़ा. यह मैं भूला नहीं. मेरे लिये ही तुम्हें अपनी संगीत कैरियर छोड़नी पड़ी, यह भी बार-बार मन में आता है. मैं तुम्हारा गुनहगार हूं. फिर भी...फिर भी...मैं प्रज्ञा के साथ जा रहा हूं. इसलिये...इसलिये कि...मुझ जैसे फकीर को साथ देने के लिये, उसके आधार के लिये, उसको संभालने के लिये तुम्हारे हाथ खाली नहीं हैं. तुम्हारे पास मेरे लिये, मेरे संगीत के लिये वक्त भी नहीं है.

पढ़ते-पढ़ते साधना के सामने उसका भूतकाल समूर्त हो गया. गाने के कारण ही दोनों एक दूसरे के नजदीक आए थे. दोनों ही साधुराम जी के पट्ट शिष्य. दोनों के बारे में गुरु जी के मन में बड़ी आकांक्षाएं थी. ये दोनों अपने संगीत घराने का नाम रोशन करेंगे, इसके बारे में उन्हें जरा भी संदेह नहीं था. गाते-गाते वे एक दूसरे के करीब आए. दोनों के दिल मिल गये और दोनों ने विवाह कर लिया. संगीत क्षेत्र में नाम कमाने के प्रयास जारी थे. महफिल के लिये दोनों स्वतंत्र रूप से आमंत्रित किए जाते थे. साल भर में मधु का जन्म हुआ. तब कहीं उनकी समझ में आया, उन्हें कहीं घर बसाना चाहिए. यूं बच्ची को गोद में लिये गांव-गांव घूमना अब मुमकिन नहीं है. बढ़ती जरूरतें पूरी करने के लिये, स्थिरता पाने के लिये निश्चित रूप से अर्थ प्राप्ति करा देने वाला कुछ काम करना भी जरूरी हो गया. तब साधना ने नौकरी करने का और निरंजन ने संगीत साधना करने का विचार निश्चित किया. साधना को एक बैंक में नौकरी मिल गई. गृहस्थी को स्थिरता मिल गयी. मधु तीन साल की हुई और अनूप का प्रवेश घर में हो गया. दिन-साल गुजरते गए. निरंजन उत्कर्ष की एक एक सीढ़ी चढ़कर प्रतिष्ठित गायक बन गया. घराने शाही में बंदिस्त शास्त्रीय संगीत को उन्होंने अपने अभ्यास और प्रयोग से नयी आभा, नया चेहरे देने का प्रयास किया. उसकी लोकप्रियता बढ़ती गयी. तर्ज समीक्षकों के दिल में उन्होंने अपना अलग स्थान बना दिया.

आज कल साधना को लगता था, सुरों का सिरा पकड़कर निरंजन ने ऊंची उड़ान भर ली हैं. उसकी नजर क्षितिज के पार पहुंच गई है, किन्तु वह स्वयं जमीन पर ही खड़ी है. सप्त सुरों का धागा हाथ से कब छूट गया, पता ही नहीं चला. अब उसका गाना नौसिखियों की तरह रहा है. बैंक में नौकरी करते-करते क्या

मैं इतनी रूखी बन चुकी हूँ? कबसे हुआ यह सब? गाते-गाते निरंजन ने कभी सुरीली तान ली या लयदार मीड या कोई खास जगह ली तो पहले की तरह दाद नहीं निकलती मुंह से. कभी काम की व्यस्तता में...या फिर कभी ध्यान में ही नहीं आता. तान जैसे बेजान हो गये हैं. गाने की दाद तुरंत नहीं दी गई तो निरंजन के अंदर का कलाकार दुःखी हो जाता. अपने खत में उसने यही लिखा था. पर पारिवारिक तथा व्यावसायिक जिम्मेदारियां निभाते-निभाते वह इतनी थक जाती, कि चाहते हुए भी वह अपने मन को ताजा, उत्फुल्ल, तरल नहीं रख पाती.

बाद में मधु गाना सीखने लगी. उसकी आवाज, लगन, उसकी प्रतिभा यह सब देखकर साधना में अपनी सारी आकांक्षाएं उसी पर केंद्रित की. अपना सपना मधु के द्वारा पूरा करने का उसने ठान लिया. मधु की दसवीं की परीक्षा के बाद उसकी गाने की साधना अब्ल स्थान लेगी और कॉलेज की शिक्षा दूसरे स्थान पर रहेगी, ऐसा सब साधना ने निश्चित किया था. मधु और निरंजन भी यही चाहते थे. गाना ही मधु का कैरियर होगा, यह निश्चित रूप से तय हो गया था. बस! मधु की दसवीं की परीक्षा होना ही बाकी था और अचानक आज निरंजन प्रज्ञा के साथ घर छोड़कर चला गया था.

प्रज्ञा तीस साल की थी. पिछले छः सात सालों में वह उनके घर आती थी. वह पी.एच.डी. कर रही थी. लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत में अनुबंध इस विषय के संदर्भ में पूरे भारत वर्ष में घूम-घूम कर उसने लोक संगीत का अध्ययन किया था. विभिन्न प्रतिष्ठित गायकों के साथ विचार-विमर्श किया था. इसी संदर्भ में निरंजन के साथ चर्चा करने एक दिन वह उनके घर आई और फिर आती ही रही. प्रबंध पूरा होगा. उसे पी.एच.डी. की उपाधि मिल गई. पर निरंजन के गाने की प्रतिभा से प्रभावित होकर वह उसके पास गाना सीखने आने लगी. आज-कल तो उसकी हर महफिल में तानपुरा के साथ संगत वही करती है. कई साल पहले वह जिम्मेदारी साधना निभाती थी. अब घर-गृहस्थी के कारण गांव-गांव जाने के लिये उसे फुरसत ही कहां मिलती?

निरंजन ने लिखा था, 'प्रज्ञा अब मेरी प्रेरणा हो गई है. मेरी चेतना हो गई. मेरी प्रतिभा, मेरी स्पर्धा हो गई है. संगीत में मेरे जो नये प्रयोग चल रहे हैं, वो मेरे अकेले के नहीं है. वे हम दोनों का संयुक्त प्रयास है. उसका अध्ययन, चिंतन ही मैं अपने गायन द्वारा लोगों के सामने प्रस्तुत करता हूँ. नहीं...अगर वो मेरे साथ नहीं रहेगी तो मेरा गाना भी नहीं रहेगा. उसके अस्तित्व से मेरा गाना खिल उठता है, मुझे नई-नई कल्पनाएं सूझती हैं, भांति-भांति के स्वरचित्र मेरे सामने प्रगट होते हैं. उसके बिना गायक के रूप में मेरा अस्तित्व ना के बराबर होगा. मुझे मालूम है, यह विचार गलत है किन्तु मेरे लिये यही वास्तव हो रहा है.

साधना पढ़ते-पढ़ते सन्न रह गई. पांच छः सालों से प्रज्ञा घर आती है. मीठी और सुरीली आवाज वाली, कम बातें करने वाली, शांत, प्रतिभावंत युवती प्रज्ञा से साधना अपनी छोटी बहन की तरह प्यार करती थी. जाने-अनजाने में अपना यौवन रूप साधना उसमें ढूंढती थी. निरंजन के बारे में प्रज्ञा के मन में श्रद्धा थी, भक्ति थी. भक्ति भावना कभी प्रीति में भी परिवर्तित होगी और वह अपनी सौतन बनेगी, ऐसा कभी साधना में सोचा ही नहीं था. बहन सौतन कब हुई, उसे समझ में नहीं आया. कब, कैसे हुआ यह सब? मेरी कैसी, कहां चूक हो गई, साधना सोचती रही... सोचती रही...

निरंजन को संगीत साधना के लिये पूरा समय मिले, यह सोचकर साधना नौकरी करने लगी. बच्चे हो गए. काम बढ़ता गया. घर-गृहस्थी की चिंताएं बढ़ गई. घर के काम-काज में, बच्चों की निरंजन की देखभाल में, संगीत का धागा हाथ से कब छूटा, पता ही नहीं चला. अब तो संगीत के साथ निरंजन का साथ भी छूट रहा है. संगीत के कारण ही दोनों आपस में मिले थे. पहचान बढ़ी थी. प्यार के, विवाह के बंधन में दोनों बंधे थे. तो क्या अब संगीत के कारण ही वह उसका साथ छोड़ रहा है. साधना को कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था.

आगे चलकर निरंजन के रियाज के वक्त उपस्थित रहना साधना के लिये कठिन होने लगा. जब वह वहां होती तो खास जगहों पर, सुन्दर मीड पर, दमदार तान लेने पर दाद देती. मन कितना उत्सुक और उत्फुल्ल था तब. कभी-कभी कुछ सूचना भी करती. बाद में बच्चे हो गए, तब उनका रोना-धोना, मां की जिम्मेदारियां, फिर उनके स्कूल, होमवर्क, खेल, कल्चरल, एक्टिविटीज, घर के काम, नौकरी...इन सबसे आने वाली थकान इन सभी के कारण अब निरंजन के आगे पीछे वह पहले की तरह मंडराया नहीं करती थी. उसकी और अपनी गृहस्थी सम्भालते-सम्भालते वह संगीत से दूर हो गई...बहुत दूर...किन्तु यह सब सम्भाले-सम्भाले वह निरंजन से भी कभी दूर जाएगी, यह उसने कभी सोचा ही नहीं था.

शुरू-शुरू में साधना को लगता वह बधिर हो गई है, अचेत हो गई है. कुछ दिन...कुछ माहों के बाद यह भावना भी कम होती गई. रियाज की बात तो छोड़ो, हर महफिल में उपस्थित रहना भी संभव नहीं रहा. निरंजन की कीर्ति बढ़ गई, पद उसकी प्रतिभा के रूप में साधना का स्थान खत्म होता गया और आज...आज तो जैसे बिजली टूट पड़ी उस पर... मुझसे 17-18 साल छोटी उसकी शिष्या...उसके साथ रहने का वह सोच रहा है. सच है, अब उसे नाम मिल गया है, उसके गाने पर जान न्यूछावर की जाय तो भी कम है, प्रज्ञा संवेदानाक्षम है, तरल मनोवृत्ति की है, अध्ययनशील है, सच्चे साधक में जो गुण आवश्यक है वह सभी

प्रज्ञा में है, यह भी सच है कि निरंजन के संगीत क्षेत्र में किए जाने वाले प्रयोगों में उसका बराबरी का हिस्सा है, साधना इस बात से निश्चित रूप से सहमत थी मगर क्या इसके लिये शारीरिक समीपता अनिवार्य है? शिष्या तो बेटी समान होती है। साधना सोच रही थी। सोच ही रही थी।

शाम को मधु ट्यूशन से वापिस आ गई। अपनी चप्पलें कोने में खिसका दिए, स्कूल बैग सोफे पर फेंक दीं और पूछा, 'मां पापा आ गए? सुबह आने वाले थे ना?' जब उसकी नजर साधना के चेहरे की ओर गई तो वह जान गई कि पापा नहीं आए। 'ओह, नहीं आये ना? कब आएंगे?' वह पूछती रही। मधु निरंजन की लाडली बेटी। 'मेरा गाना मेरी मधु आगे ले जाएगी।' वह हमेशा कहता। उसकी मां की अपेक्षा पापा के साथ जमती थी।

साधना में निरंजन का खत मधु के हाथ में थमा दिया। 'मधु दसवीं में है। अब बड़ी हो गई है। उससे क्या छिपाना? कभी न कभी बाहर के लोगों से उसके कान पर भनक पड़ ही जाएगी। उससे अच्छा है, खुद ही उसे बता दूं,' साधना ने सोचा। उसका मन यह सदमा बर्दाश्त करने के लिये कम से कम तैयार तो होगा।

खत पढ़ते-पढ़ते मधु ने अपने होंठ क्रोध से दांतों तले दबा दिए। 'हम लोगों ने इंदौर में रहने का तय किया है। मेरी सेहत के लिये, खास करके गले के लिये मुंबई की अपेक्षा इंदौर की आबो-हवा अच्छी रहेगी। मैं वहां नहीं हूं, अतः मधु के गाने की ओर अब तुम्हें ध्यान देना होगा। मेरा विश्वास है वो तो तुम करोगी ही। ... मैं बीच-बीच में घर आ जाऊंगा। मेरा यह भी विश्वास है कि तुम ना नहीं कहोगी। मैंने अलग घर बसा दिया, तो भी मैं तुम्हारी और बच्चों की जिम्मेदारियां तालना नहीं चाहता। मैं वहां आऊंगा तो मधु को सिखाऊंगा। अगर तुम्हें कोई आपत्ति ना हो तो मधु को छुट्टियों में यहां इंदौर भेज दो। यहां भी उससे तालीम करवाऊंगा।

निरंजन का खत पढ़कर मधु परेशान हो गई। 'उफ...मेरे प्यारे पापा...मुझे छोड़कर चले गए...गाने के लिये...नहीं चाहिए मुझे ऐसा गाना...' उसने खत के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। पर टुकड़े करने से क्या वास्तविकता बदल सकती है? साधना के मन में आ गया। इसके बाद मधु की अवस्था दोलायमान हो गई। एक ओर से पापा के लिये तिरस्कार भरा था तो दूसरी ओर न चाहते हुए भी पापा की यादें उमड़ पड़ती। उनका हंसना-हंसाना, उनकी मस्खरी, गाते वक्त उनका बेईमान होना, उनका षड्यंत्र, उनकी तान, फिरत, मीड उसकी कानों में गूंजती रहती। इन सभी बातों का तनाव उसके मन पर छा गया। उसे निराशा का (डिप्रेशन) का दौरा पड़ गया। इस अवस्था से उसे बाहर निकालने के लिये साधना को काफी प्रयास करने पड़े। निरंजन दो चार बार घर आए किन्तु मधु ने उनसे मिलने के लिये इन्कार कर दिया। समय के

साथ-साथ मधु स्वस्थ हो गई, पर उसके बाद उसने गाना छोड़ दिया हमेशा-हमेशा के लिये। किसी के समझने-बुझाने का, धमकाने का कोई असर उस पर नहीं हुआ।

साधना ने कितनी बार मधु को समझाया, 'बेटी, तू गाने वाले का गुस्सा गाने पर उतार रही हो यह ठीक नहीं है। ऐसा मत करो। वृथा हठ करके गाने का आनंद मत गंवाओ। गाना आनंददायी है। पर मधु ने अपने होंठ जैसे सी लिये थे। गाना-वाना तो दूर की बात, उसने गाना सुनना भी छोड़ दिया था। घर में जब कभी रेडियो या टी.वी. पर गाना सुनाई देता। तो वह खटाक से बटन बंद कर देती।

ऐसी मधु...आज कितने सालों के बाद गा रही थी। बैंक से आती हुई साधना, अचरज में डूबी बुत की तरह वही की वही खड़ी रही थी। मधु को अपनी मां की आहट लग गई। उसकी अचरज से भरी विस्फारित आंखें देखकर उसे पता चला, आज कोई अघटित घटना घटी है। अरे हां, मैं गाने लगी हूं। आज सुबह से गाने की तीव्र इच्छा मन में उमड़ रही थी। बरसों से दबे सुर बाहर आने के लिये व्याकुल और उतावले बन गए थे। अपनी गर्भ पेशियां क्या नानाजी के साथ रिश्ता जोड़ रही है? क्या नानाजी के जीन्स और गर्भपेशियों में संक्रमित हुए है? उसके धर्म नियमों में से क्या खून के साथ सुर भी प्रवाहित हो रहे है? मैं नहीं मेरे गर्भ में बसी नन्हीं जान गा रही है। उसका हर रेणू मेरे मुख से गा रहा है। अब किसका तिरस्कार करूं मैं? किस चीज का त्याग करूं।

साधना की ओर ध्यान जाते ही मधु भागती हुई उसके पास गई फिर सोफे पर बैठी हुई साधना की गोद में अपना मुंह छिपा लिया, जैसे उसने कोई गुनाह किया है और उसके लिये उसे शर्मिंदगी महसूस हो रही है। साधना प्यार से उसका सर सहलाते हुई बोली, 'गाओ बेटी गाओ...तुम्हारे पेट में पलने वाला, बढ़ने वाला यह अंकुर, जिस तरह ईश्वर की देन है, उसी तरह तुम्हारे गले से झरने वाले सुर, तुम्हारा गाना भी ईश्वर की देन है। ईश्वर की इस देन को खुले मन से स्वीकार करो। ऐसे सुर गले में रखने के लिये, संगीतमय प्रतिभा की देन के लिये, ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रगट करो। इसको इन्कार मत करो.'

मधु ने सर ऊपर उठाया। कितने दिनों से उसके दिल में मंड़राने वाला तूफान शांत हो गया था। उसे लगा, पेट में पलने वाले इस जीव ने कोई नया विचार दिया है। नया जीवनाधार दिया है। नई प्रेरणा दी है। अब वह संगीत से दूर नहीं रहेगी। कभी नहीं...

□□

अंधी लालटेन

अमृत राय

गली के नुक्कड़ पर मैं सर झुकाये, कमर दोहरी किये खड़ी हूं. धूप कैसी, रोशनी की भी यहां कम ही गुजर है.

हर शाम एक आदमी छोटी-सी एक सीढ़ी लेकर आता है और दिया-बत्ती कर जाता है, ताकि लोग अपना रास्ता देख सकें. रास्ता तो मैं सोचती हूं, लोग अपने पैरों के अभ्यास से देखते हैं, इतनी रोशनी मेरे अंदर कहाँ! हां, मैं इन अंधी आंखों की हलकी-सी रोशनी से जरूर अपनी गली को थोड़ा-बहुत देख लेती हूं. इतना ही मेरे लिए बहुत है.

सुना है, यह गली पहले कच्ची थी, अब तो यहां से वहां तक छोटे-बड़े पत्थर जड़े हैं. आगे जाकर यह गली बंद हो जाती है. दर्जनों कुत्ते भूंक रहे हैं. साइकिल पर सवार एक आदमी तेजी से उनके बीच से निकल जाना चाहता है. दो-तीन कुत्ते उसके पैरों पर लपकते हैं. वह घबराकर गिर पड़ता है, और झपटकर एक पत्थर उठा लेता है. उसके पैर कांप रहे हैं. कुत्ते और भी जोरों से भूंकने लगते हैं. लड़कों का एक गोल, जो अभी चोर सिपाही खेल रहा था, अपना खेल बंद करके इस नये तमाशे का मजा ले रहा है. मिसिरजी के यहां सीतापुर से या रामपुर से, एक कोई बड़े कथा बांचने वाले आये हैं. हर रोज बारह-एक बजे तक रामायण की कथा होती है. भीड़ जमा होने लगी है. तखत तो आधी गली को घेरे यों ही बाहर पड़ा रहता है. उस पर एक मैली-सी चौदनी बिछा दी गयी है. हरमोनियम लाकर रख दिया गया है. दो-एक बैलों के हार भी दिखायी पड़ रहे हैं. गैस का एक हण्डा भी आ गया है. गली जगमग हो जाती है, जैसे दिन निकल आया हो. पता नहीं अभी और कितने दिन यह कथा होगी. अकसर गली के कुत्ते भी हरमोनियम के सुर से सुर मिलाकर...तब डण्डे से उनकी पूजा की जाती है. एक आदमी मोटा-सा एक डण्डा लेकर पहरा देता है. अच्छा है. ये कुत्ते इसी के काबिल हैं. जब देखो तब आकर मुझे गंदा करते रहते हैं. एक रोज काट भी खाया बेचारे चंदू को. चंदू की मां मर गयी है. बाप ने पंद्रह दिन बाद दूसरी शादी कर ली. चंदू का हाल भी अब इन्हीं कुत्तों जैसा है. चाहे जिसके दरवाजे पड़ा रहता है. जो कुछ जहां मिल जाय, खा लेता है. कहीं से एक फटी-पुरानी पोथी उसके हाथ लग गयी है. दिन को चंदू शायद काम की खोज में निकलता है, या कौन जाने भीख मांगता हो दूसरे मुहल्ले में जाकर! और

रात, हर दूसरे-तीसरे, अपनी पोथी लेकर आ जाता है और मुझसे सट कर बैठ जाता है. चार-छः गाय-भैंसों भी बैठी रहती हैं मटमैली रोशनी के घेरे में. मुझे तो यह भी एक रामायणी मण्डली लगती है, देखने में.

एक रोज चंदू ऐसे ही बैठा था कि उसका बाप आया. छोटे-छोटे बाल, लाल-लाल आंखें पूरा कसाई दिखता था. शराब पी रखी थी. आते ही उसने चंदू को इतनी जोर का एक रहपट लगाया कि बेचारे ने खून फेंक दिया, और शेर की तरह गरजते हुए कहा-क्यों बे साले, हरामी के पिल्ले, तुझे अपने घर में जगह नहीं मिलती, जो यहां मरने आता है. मेरी नाक कटा कर रख दी दुनिया में! घर चल, फिर देख, मैं कैसे तेरी बोटी-बोटी...

चंदु शायद जानता था कि यह बात ही बात नहीं है. भाग निकला. बाप उसके पीछे दौड़ा. कुत्ते बाप के पीछे दौड़े. एक ने उसकी धोती पकड़ ली. बाप राम मुंह के बल गिरे. धोती चिथ गयी सो अलग.

फिर चंदू महीनों नहीं दिखायी दिया.

चंदू की नयी मां बहुत जवान है और बहुत खूबसूरत है. अपने आदमी से कुछ नहीं, तो पच्चीस बरस छोटी होगी. कितनी ही बार मैंने दोनों को साथ-साथ जाते देखा है. मस्त हथिनी की तरह चली जा रही थी. क्या समझती है वह इस बुढ़े-ठेले चंदू के बाप को! अकड़कर चलने से ही क्या सब कुछ हो जाता है? चंदू का बाप शराबी है सही, पर क्या उससे बुढ़ा आदमी जावान हो जायेगा? झूठमूठ धौंस जमाता है उसके ऊपर. एक दिन बड़ा गुस्से में बिफरा चला जा रहा था. पता नहीं कहां से लौट रहे थे दोनों. देखी होगी कोई ऐसी-वैसी बात. कहने लगा-देख, चंपिया, तू मुझे जानती नहीं अभी, मैं तेरी मूड़ी काट लूंगा.

चंपिया ऐंठकर बोली-जबान संभाल कर बात कर, बड़ा आया मूड़ी काटने वाला. सेंट-मेंत की मूड़ी है न, जो तुम काट लेगा.

चंदू का बाप तिलमिला गया, दांत पीसकर बोला-गुस्सा मत दिला, चंपिया, टांग पकड़कर चीर दूंगा.

चंपिया बड़े जोर से हंसी. ऐसी हंसी मैंने पहले नहीं सुनी थी. मेरे रोंगटे खड़े हो गये. फिर चंपिया का चेहरा भी डाइन-चुडैल सा हो गया, धोती ऊपर जांघ तक खींचती हुई चिल्लाकर बोली-ले चीर टांग, चीर, अपने बाप का जना है तो.

चंदु के बाप का चेहरा फक हो गया. उस एक घड़ी में कितने ही रंग उसके चेहरे पर आये और गये. हिम्मत नहीं पड़ी कुछ भी करने की. कैसे पड़ती, बड़ी खतरनाक औरत है. एक से एक

मुस्टण्डों से आसनाई है उसकी. दो को तो मैंने देखा भी है इसी चंपिया के साथ. बड़े कड़ियल जवान थे दोनों, सिल पर भांग की तरह घोटकर पी जायें इस चंदुआ के बाप को.

चंपिया इस बार और भी जोर से हंसी-बस... इतने ही गुर्दे पर टांग चीरने चला था? नामर्द...

चंदू के बाप ने दाहिना हाथ घुमाकर एक जोर का लप्पड़ चंपिया को मारा. चंपिया गिरने-गिरने को हुई, मगर संभल गयी और जंगली बिल्ली की तरह कूदकर उसने अपने आदमी का मुंह बकोट लिया और इसके पहले कि वह संभल सके, चंपिया के दांत उसके बायें कंधे के गोश्त में गड़ चुके थे. उसकी सारी तेजी, सारा गुस्सा हवा हो गया. शरीर ढीला पड़ गया. दांतों की पकड़ कसती गयी. छुड़ाना भी मुश्किल था, चंपा उसकी पीठ की तरफ थी.

आखिर चंपा की ही जीत हुई. अब वह आगे-आगे चल रही थी, चंदू का बाप पीछे-पीछे पूंछ दबाये चल रहा था. चंपा की त्योरियां अब भी चढ़ी थीं. फुफकारती हुई बोली-आज तूने मेरे ऊपर हाथ उठाया...ऐसी मजाल तेरी. खाल न खिंचवा तूं तो कहना...

क्या कहता चंदू का बाप, कौर दबी थी. नेम-धरम की बातें करने लगा. बोला-चंपिया, यही धरम है तेरा? तेरे पीछे मैंने चंदुआ को गंवाया...

चंपा तुनककर बोली-मैंने कब कहा था कि तुम उसे घर से निकाल दो.

-तू ही तो पड़ी रहती थी उसकी जान को.

-तुम्हारी आंखें फूट गयी थीं?

फिर वह आगे बढ़ गये और मैं कुछ सुन नहीं सकी. घर जाकर जरूर फिर जोर का झगड़ा हुआ होगा. भैया की बातें. चंपिया अकेली काफी है उसके लिए. सरऊ बात ही करते रह जायेंगे, चंपिया सचमुच एक रोज हंसिया से उनकी मूड़ी काट लेगी.

चंदू पता नहीं कहां मर-बिला गया. महीनों पर महीने बीतते गये. सकीना की मां मर गयी. रायबहादुर हीरालाल का तोता मर गया. शंभू के घर में कोई मरी बिल्ली डाल आया. कामता के घर में चोर घुसे और जल्दी में अपनी ही थैली भूल गये, जिसमें कहीं और का चुराया हुआ नौ सौ रुपैया था. राम संजीवनी की बेटी किसी दूधवाले के साथ भाग गयी. नब्बे साल के अफीमची नन्हें मियां को एक सांप ने काट खाया और वहीं लोट गया. कुत्तों को भगाने के पीछे हेड-क्लर्क मथुरा बाबू का छाता टूट गया. बेचारे हाय-हाय करते घर पहुंचे और तीन महीने बिस्तर से नहीं उठ सके.

यह सब हुआ. मैंने देखा, मैंने सुना. और तीसों दिन बारहों महीना, जाड़ा-गर्मी-बरसात, इसी तरह खड़ी रही. हां, मेरी गरदन अलबत्ता बुढ़ापे से थोड़ी झुक गयी है और ऐसा लगता है, जैसे ऊपर से नीचे तक मोर्चा लग गया हो.

एक दिन की बात है रात के कोई ग्यारह बजे होंगे, कई दिन से झड़ी लगी हुई थी, उस बखत भी रिमझिम पानी गिर रहा था, मैंने चंदू को अपने पास से जाते देखा. चंदू ने मेरी तरफ ताका तक नहीं, जैसे कभी की जानपहचान न हो. अपने साथी से बात करता चला जा रहा था. उसको पहचानने में थोड़ा समय लगा मुझे और जब पहचाना, तो मेरी हैरानी का अंत न रहा. वह रायबहादुर हीरालाल का बेटा सुनील था. सुनील और चंदू का क्या साथ? रायबहादुर हीरालाल की ऊंची हवेली इस गली की शान है. उन्हीं के नाम से यह गली जानी जाती है. बहुत अमीर आदमी हैं. सरकार उनको बहुत मानती है. हर रोज एक-न-एक अंग्रेज, बड़ा हाकिम फिटन पर चढ़कर उनके यहां खाना खाने आता है. डाली पहुंचाने में भी रायबहादुर साहब कभी चूक नहीं करते. अंग्रेज बड़ा दिलदार आदमी होता है. जिसको अपना बना लेता है, बना लेता है. जिले में कहीं कोई ठेका हो, किसी चीज का ठेका हो, सबसे पहला हक उस पर रायबहादुर हीरालाल का है, वह छोड़ दें, तभी दूसरे को मिल सकता है. तभी तो इतनी लक्ष्मी है घर में. उनका बेटा है सुनील. उसको और चंदू का क्या साथ, जिसके खाने का भी ठिकाना नहीं. पर लगता है, दोनों में बड़ी दोस्ती है. बहुत घुल-घुलकर बातें करते चले आ रहे थे दोनों.

फिर तो कितनी ही बार मैंने दोनों को साथ देखा. अपने घर में तो चंदू रहता नहीं, फिर यहां क्या करने आता है? लगता है, कहीं किसी हीले से लग गया है. शरीर भी अब वैसा चिमिर्खी जैसा नहीं है, कुछ-कुछ अपने बाप का बेटा हो चला है. एक दिन मैंने उसके हाथ में एक काली-काली-सी चमकती हुई चीज देखी. पिस्तौल होगी. अपने बाप को मारना चाहता है क्या? मगर बाप को मार कर क्या करेगा, वह तो यों ही दोनों एक-दूसरे के लेखे मर चुके. कौन जाने किसी से आसनाई हो. आसिकी-मासूकी का मामला टेढ़ा होता है.

गली में आजकल बड़ी हलचल है. न दिन देखें न रात, बड़ा शोर मचाता है. आसपास की गलियों से और जाने कहां-कहां से लोग बटुर आते हैं. औरत भी, मर्द भी. झण्डा लेकर निकल पड़ते हैं सब. दो-दो सौ, चार-चार सौ. बड़े जोर से चिल्लाते हैं सब, गला भी नहीं फटता. हर तीसरे-चौथे. एक दिन बड़े जोर की होली

जली. मैं समझी, आग लग गयी कहीं, ऐसी ऊंची लपट उठ रही थी. पीछे पता चला, वह भी सुराजी लोगों को बखेड़ा था. विलायती कपड़ा सबके घर से निकालकर आग लगा दी. रायबहादुर साहब की लड़कियों ने भी अपने कपड़े दे दिये. उनको ऐसा नहीं करना था-कम से कम बाप का खयाल करके. गोरों से उनकी ऐसी दांत-काटी रोटी है. बिगड़ जायेंगे, तो फिर कहां से बरसेगा ये हून. मैं भी देखती हूं, सब पगला गये हैं. अच्छा मंतर फूँका है इन सुराजियों ने. चंदू भी शायद सुराजी है. वह तो यों ही नंगा है. लेकिन सुनील?

वही हुआ, जिसके लिए मैं डर रही थी-रायबहादुर साहब ने सुनील को घर से निकाल दिया. पता नहीं, बेचारा अब कहां जाएगा. पर यह तो पहले ही सोचना था. रुपये में तीन अठन्नी भंजाता है उसका बाप. बड़ी नकधिसाई करके यह सब माया जोड़ी है. किसी का सगा नहीं है वो, बेटे का, न बाप का. वो तो बस अपने रुपये का सगा है.

उस दिन की बात है, और दिनों से भी ज्यादा शोर मच रहा था, कहीं ज्यादा. कान पड़ी आवाज नहीं सुनायी देती थी. लगता है, शहर भर के लोग यहीं जमा हो गये थे. जोर-शोर से नारे लग रहे थे. घोड़ों की टापें बज रही थी. उस शोर में भी एक सन्नाटा-सा था, जो मुझे अपने कानों में बजता सुनायी पड़ रहा था. दो लोग उस भीड़ से अलग मुझसे सटे खड़े थे और जल्दी-जल्दी बोल रहे थे. चंदू ने कहा-मैं तो दो-एक को ढेर किये बिना न छोड़ूंगा.

सुनील ने समझाया-नहीं, ऐसा मत करना. बेमतलब सौ-पचास लोगों को भुनवा दोगे. तुम्हारी एक पिंटपिटिया से क्या होगा. देखते नहीं, यहां से वहां तक बंदूकें ही बंदूकें चमक रही हैं. किरचें भी लगा रखी हैं हत्यारों ने. आज कुछ न कुछ होकर रहेगा.

चंदू ने कहा-तू भी कैसी बातें करता है, सुनील. ऐसे वक्त में यह सब नहीं सोचा जाता.

शोर और पास आता जा रहा था, जैसे बादल गड़गड़ा रहे हों. हवा बंद हो गयी थी. मेरा दम घुटा जा रहा था. इसलिए और भी कि अभी दिन था और अपनी अंधी आंखें भी मुझे नहीं मिली थीं. दोनों फौजें अब शायद आमने-सामने डट गयी थीं. एक न एक दीवार को फटना जरूर था. चंदू बोला-चलो, हम भी चलें. और जाते-जाते कीक-सी मारकर बोला-सुनील, सुनील, वह देख कमली भी आयी है.

सुनील ने अचकचाते हुए कहा-कमली! कहां? कहां?

चंदू ने कहा—वो तो रही सामने. तुझे कुछ नहीं दिखायी देता. नीली-नीली साड़ी पहने...

बाप रे बाप! रायबहादुर हीरालाल का तो दम ही निकल जाएगा. लगता है भाई के घर से निकाले जाने पर वह और भी अदबदाकर सुराजियों का साथ देने लगी. नहीं पूछो, तुम लड़की जात, अपने घर में बैठो, तुम्हारा इस आंधी-तूफान में क्या काम.

चंदू ने भागते-भागते कहा—कमली को कुछ हुआ तो, भगवान् कसम, मैं तुम्हारी एक नहीं सुनुंगा, सुनील.

दो ही चार मिनट बीते होंगे कि तड़-तड़ गोलियां चलने लगीं और न जाने कितनी देर तक चलती रहीं.

अगले दिन जमीन लाशों से पटी पड़ी थी. गली में और आस-पास सभी तरफ रोना-पीटना मचा था. घरवाले मुर्दों के उस ढेर में, आड़ी-तिरछी पड़ी लाशों के बचाते हुए, अपने सगे-संबंधियों को ढूंढते फिर रहे थे. चील-कौए यहां-वहां पतंग लगाये बैठे थे. कुत्ते अलग अपनी ताक-झांक में लगे थे.

मरने वालों में सुनील भी था. रायबहादुर हीरालाल घर से निकलकर ही नहीं आये. सुनील की अम्मां छाली पीट-पीटकर रो रही थीं. कमली बेहोश पड़ी थी. चंदू की “सुना” पुलिस ने पहले खूब गहरे से पिटाई की और फिर लारी में डालकर जेल पहुंचा दिया.

अब तो गली में सब तरफ सन्नाटा है, अंधेरा है. मुझे भी तो काट कर गिरा दिया गया है, लेकिन मैं खुश हूं, मेरा चोला भी किसी काम आया. जलूस-वलूस सब बंद हैं आजकल. गोलियों की सनसनाहट अभी हवा में बाकी है. लोग अपने दाल-भात में जी-जान से लगे हैं. कमली का दिमाग खराब हो गया है. लगता है, कुंजी कहीं ढीली पड़ गयी. झूठमूठ चौकती रहती है दिनभर. कभी सोते से उठकर बैठ जाती है और जाने क्या हबुआने लगती है. एक दिन तो गरीबदास के कुएं की ओर भागी जा रही थी. वह तो कहो देख लिया लोगों ने. जाप बैठा हुआ है ग्रह शांति के लिए. एक हजार लोगों को ब्राह्मण भोज भी होगा, ऐसा सुना है. राम करे, बेचारी अच्छी हो जाय, नहीं जिंदगी कैसे कटेगी.

कभी-कभी कोई हवाई जहाज घरघराता हुआ निकल जाता है, तो बच्चे-बूढ़े-जवान, सब बड़ी देर तक उसको देखते रहते हैं और फिर कई-कई रोज गली में उसी उसकी चर्चा होती रहती है. कोई कहता है, जापानी आने वाले हैं. आवेगा, अब कोई आवेगा, अभी तो भुखमरी आयी हुई है. किसी के घर में दोनों जून चूल्हा नहीं जलता. सबको तो देखती हूं आते-जाते. कमर झुक गयी है. आंखें गड़हों में धंस गयी हैं. बच्चे बुढ़े हो गये हैं. न खेलते हैं,

न हंसते हैं. दिन भर सिगरेट-बीड़ी के टुरें बीना करते हैं. रामकली ने अपने तीनों बच्चों को जहर देकर फांसी लगा ली. रायबहादुर हीरालाल मिलिटरी सप्लाय का काम करते हैं. लेकिन एक आदत भी तो है उनकी. उसमें पता नहीं क्या बेचते होंगे, बंद पड़ी होगी. तभी एक दिन, दो नौजवान होंगे कोई, आपस में बातें करते चले जा रहे थे. उन्हें क्या पता कि ऐसे वक्त में खंभों के भी कान होते हैं, संभलकर बात करनी चाहिए. एक ने दूसरे से कहा—रायबहादुर हीरालाल की खत्तियां देखी हैं तुमने? छत तक अटम लगा है बोरियों का. तिल रखने को जगह नहीं. रकाबगंज, निनावा, शहराराबाद, जैतपुरा, जाने कहां-कहां. पहाड़ लगा है अनाज का, पहाड़...

दूसरे पर कोई असर नहीं पड़ा, बोला—सब गोरों की उड़ायी हुई बातें हैं. उन्होंने भर रखे हैं अपनी मलेटरी के गोदाम.

पहले ने कहा—छोड़ भी, कौन तेरे मुंह लगे, मैं अपनी आंखों देख आया हूं...

दूसरे ने कहा—देख आया है, तो रपट क्यों नहीं कर देता?

पहले ने कहा—रपट तो मैं अभी कर दूं और चलकर पकड़वा भी दूं, मगर कोई सुननेवाला भी तो हो. सब तो एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं. मेरे-तेरे मरने-जीने की...

दूसरे ने बात काटते हुए कहा—तो फिर बैठ चुप मारकर, क्यों झूठमूठ अपना और दूसरे का खून जलाता है. खत्तियां मैंने नहीं देखी, हवेलियां देखी हैं, नयी-नयी, जो रायबहादुर साहब एक पर एक खरीदते जा रहे हैं.

मैं क्या जानूं. मैं तो बस एक लालटेन हूं, अंधी लालटेन. खड़ी रहती हूं, रोशनी भी अब कहां है मेरे अंदर. लेकिन हां, अपनी इन फूटी आंखों भी मैंने सोयी रात टेलों पर बोरियां ढुलते देखी हैं. जाती होंगी, जों जाती होंगी.

जो हो, लक्ष्मीजी की बड़ी कृपा है रायबहादुर साहब पर. जिस चीज को हाथ लगाते हैं, सोना बन जाती है. सुनील और कमली की करनी से साहब लोग काफी उखड़ गये थे उनसे, दो-एक महीने न कोई मुजरा हुआ न किसी साहब-मेम की शक्ल दिखायी दी. मगर फिर क्या कहना रायबहादुर साहब का, बात क्या करते हैं, मिश्री घोलते हैं, उन्होंने फिर सब कुछ पहले जैसा जमा लिया.

इसी तरह तीन-चार बरस निकल गये. किसी ने जेल की हवा खायी किसी के हाथ-पैर टूटे, किसी ने पेड़ की छाल खाकर अपने प्राण बचाये, किसी ने अपना शरीर बेचा, रायबहादुर हीरालाल अपना वही जादू का पेड़ हिलाते और रुपया बटोरते रहे और आज तीन चौथाई शहर के मालिक हैं.

फिर एक दिन बड़े जोर का जश्न मनाया गया. शहर में जगह-जगह प्रभात-फेरी हुई. छोटे-बड़े बहुत जलूस निकले. जिधर देखो, तिरंगे झण्डे की बहार. (चंदू भी बड़ा सा एक झण्डा लिये इधर-उधर कुदक्कड़ा मारता घूम रहा था). कहीं फाटक बन रहे हैं, कहीं बंदनवार सजाये जा रहे हैं, कहीं हवनकुण्ड बन रहा है, कहीं वेद पाठ हो रहा है, कहीं सभी मंच बन रहा है. लोगों के चेहरे जगमगा रहे हैं, सब तरफ एक बिजली-सी दौड़ रही है. और तो और इसी हल्ले में मेरा भी कायाकल्प हो गया. नीचे से ऊपर तक मेरे शरीर में सेंदुर का लाल चटख रंग पोत दिया गया. मेरी भी नयी जिंदगी शुरू हुई.

मेरी खुशी का ठिकाना नहीं है. सांस भीतर समा नहीं रही है. सबके भीतर एक फुरहरी-सी दौड़ रही है. लेकिन पुरानी बातें मैं भूलूं तो कैसे भूलूं. यहां से चार कदम पर सुनील उस दिन गोली खाकर मर गया, लेकिन रायबहादुर हीरालाल घर से बाहर नहीं निकले और न शायद एक आंसू उनकी आंख से निकला, आज वही रायबहादुर साहब आजादी के जश्न में सबसे आगे-आगे थे. महीन खादी की झक सफेद धोती, वैसा ही महीन कुर्ता, और गांधी टोपी. सबसे आगे-आगे दौड़ रहे थे. जहां जरूरत हो, वहां भी. तीनों मोटरों उनकी अलग दौड़ते-दौड़ते बेदम हुई जा रही थी. मैंने सुना कि शहर भर में सैकड़ों फाटक बनाये जा रहे थे-एक से एक दामी, एक से एक सुंदर. एक फाटक चांदी के बरतनों को, मुझसे जरा हटकर तैयार किया जा रहा था-रायबहादुर हीरालाल की गली का सिंहद्वार. पचीस-तीस आदमी सबेरे से उसमें लगे थे. उन्हीं लोगों के मुंह से मैंने यह भी सुना कि रात को रायबहादुर साहब की हवेली पर ग्यारह सौ लोगों का भोज होने जा रहा था. आते-जाते लोग उनको सराह रहे थे-शेर का कलेजा है. कैसा पानी की तरह रुपया बहा रहा है, और कौन माई का लाल करेगा. खजाना खोल दिया है, करो जितना खर्च करना हो. पैसे की परवाह मत करो, काम ऐसा होना चाहिए कि शहर वाले देखते रह जायें. यह दिन बार-बार थोड़े ही आता है. लक्ष्मी जी आदमी देखकर जाती हैं, जिसके यहां जाती हैं. अरे, तो क्यों न करे भाई, इसी आजादी के पीछे तो उसने अपना हीरे-सा बेटा गंवाया, बेटी पागल हुई सो अलग.

मैं हौरान हूं, लोगों को कुछ याद क्यों नहीं रहता. अपने इन्हीं कानों से मैंने रायबहादुर साहब के लिए भद्दी गालियां सुनी हैं. आज उन्हीं की तारीफ करते लोग नहीं अघाते.

फिर पता नहीं, कितने दिन बीत गये, या कितनी सदियां बीत गयीं, मेरे लेखे सब बराबर है. सुना है, आज फिर कोई बड़ी सभा

है, दसवीं कि पंद्रहवीं सालगिरह. मैंने पूछा, काहे की, तो वह मेरा ही मुंह ताकने लगे. कोई कहां तक याद भी रखे, रोज ही तो भोपूं चिग्धाड़ता रहता है. मैं इसी उधेड़-बुन में थी कि तभी चंदू मेरे पास आकर खड़ा हो गया. देखने लगा, सब कुछ जो हो रहा था. उसकी तरफ किसी ने नहीं देखा. तब वह मुझसे सटकर खड़ा होगया. मैं उसकी बुढ़िया संगिन जो ठहरी.

-देखती हो?

-देखती हूं.

-क्या देखती हो?

-देखती हूं कि लोग तुमको नहीं देखते.

-तुम्हें तो होगी याद अगली बातों की?

-याद क्या होती है चंदू?

-जो किसी को न रहे, वही याद है.

-मैं तो चिढ़ा रही थी तुम्हें. मेरे पास यादों के सिवा और है भी क्या.

-यहीं पास में सुनील के गोली लगी थी.

-हां.

-और यहीं, थोड़ा आगे, गोरों ने कमली को...

-कोई दाग-धब्बा नहीं ठहरता, मिट्टी सबको खा जाती है.

-मैं कौन हूं.

-मैं लालटेन हूं.

-नहीं, नहीं, मैं कौन हूं?

-तू एक चिथड़ा है. चिथड़ा बड़े काम की चीज है.

-फिर लोग उसे फेंक क्यों देते हैं?

-इसलिए कि घर में चिथड़ा रखना दलित्वादी की निशानी है.

-झण्डा भी तो एक चिथड़ा है.

-कैसी बात करता है तू. झण्डा कभी चिथड़ा नहीं होता, उसे बार-बार फेंककर बार-बार उठा लिया जाता है.

-आज का दिन भी कैसा है. मैं धूप में खड़ा हूं, पर मेरी छाया नहीं पड़ रही है कहीं.

-पागल हुआ है, देखता नहीं, सूरज तेरे सर पर चमक रहा है.

चंदू को मैं बहुत प्यार करती हूं. बहुत अच्छा लड़का है. बड़ा मजा आ रहा था उसको चिढ़ाने में. मैं कहना चाहती थी कि इसमें बुरा मानने की वैसी कोई बात नहीं है. देश को जब सिपाहियों की जरूरत थी, तब तुम्हारी पूछ थी, आज तो इस रंगीन त्योहार की कामयाबी के लिए कुछ दूसरे ही लोगों की जरूरत है, जो भांडों की तरह नकलें उतार सकते हैं, तरह-तरह की आवाजें गले से निकाल

सकते हैं, जो अच्छे बहुरूपिये हैं, अच्छे बाजीगर हैं, उन्हीं से तो उत्सव जमेगा. रूखे-फीके सिपाही लेकर हम क्या करेंगे.

यही कुछ मैं चंदू से कहना चाहती थी, मगर पगला उसके पहले ही चला गया, तो मैंने कहा—लाओ मैं भी ऊँघ लूँ थोड़ी देर.

जब जागी तब तक फाटक-वाटक, झण्डियां-वण्डियां पूरी हो चुकी थीं. बड़ी-बड़ी मोटरें सन्-सन् दौड़ रही थीं. मैदान तेजी से भर रहा था. भौंपू गला फाड़कर गाये जा रहा था. जाने कहां-कहां के खोमचेवाले, तमाशे वाले आकर मैदान के बाहरी घेरे में जम गये थे, बिजली के हजारों लट्टू जग रहे थे. रात को दिन बनाने का सामान तैयार हो रहा था.

सभा का वक्त हो गया था. अब बस किन्हीं बड़े नेता जी का ही इंतजार था. मेरे पास से आते-जाते उन्हीं का नाम ले रहे थे. रायबहादुर हीरालाल बिजली की फुरती से अपने इंतजाम की नोक-पलक ठीक करने में लगे थे. पसीने के मारे बुरा हाल था. आखिरकार नेता जी जहाज जैसी लंबी गाड़ी में आये और सब तरफ सन्नाटा छा गया. सांस रोककर लोग बैठ गये. मैंने भी कान लगाये. लेकिन तभी एक अजीब-सी खलबली मुझे एक तरफ के लोगों में दिखायी दी. कुछ लोग खड़े हो रहे थे, कुछ उलझकर न जाने क्या देखने की कोशिश कर रहे थे, कुछ इधर-उधर भागने लगे. सांप-बिच्छू कुछ निकल आया क्या कहीं से?

नजर जो घुमाती हूँ, तो कमली. वही पागल छोकरी रायबहादुर साहब की—लगभग नंगी, बदहवास, चीकट बाल बिखरे, चेहरे पर हवाइयां उड़ती हुई, छाती पीटती, जाने क्या-क्या ऊटपटांग बकती-झकती भीगती चली आ रही थी. और उसके पीछे “पकड़ो-पकड़ो” का शोर मचाती हुई एक फौज रायबहादुर के नौकरों की...

...उस गुल-गपाड़े में कुछ सुनायी पड़ा, कुछ नहीं सुनायी पड़ा. और फिर जाने कैसे मेरी नजर अपने आप उचटकर रायबहादुर साहब की तरफ चली गयी, जो उस वक्त मंच पर खड़े उन बड़े नेता जी से बातें कर रहे थे और बेतहाशा मुस्कराये जा रहे थे, कमली का यह काजालिक रूप और उसके पीछे अपने नौकरों की बारात देखकर उनके चेहरे का रंग उड़ गया, जो शायद किसी और ने नहीं देखा, मगर मेरी तो आंखें गड़ी थी उन पर और मैंने देखा कि उस एक मिनट में कितने रंग उनके चेहरे पर आये और गये. फिर वह उसी तरह मुस्कराते हुए एक ओर को सरक गये, जहां पुलिस का कोई बड़ा अफसर था. पता नहीं रायबहादुर साहब ने चुपके-चुपके उसके कान में क्या कहा, जरा देर बाद मैंने देखा कि पुलिस का एक जत्था कमली को पकड़े लिये



जा रहा है और वह उसी तरह हाथ-पैर पटकती हुई “मैं भारतमाता हूँ. भारतामाता की जय!” की रट लगाये है. जरा आगे जाने पर वह एक जगह ठिठककर खड़ी हो गयी और बहुत डरावने ढंग से उठकर हंसती हुई बोली—“सुहागरात! मेरी सुहागरात! कमली की सुहागरात!...” और अजीब ढंग से आंखें नचाने लगी. पुलिस वाले कुछ भी न समझे. बंदरों की तरह खी-खी खी-खी हंसते रहे. पगली की बातें. हंसते-हंसते कब उसकी आंखों से आंसू नन्हीं-सी कुप्पी के तेल की तरह बूंद-बूंद करके टपकने लगे, किसी ने देखा न समझा.

तभी बादलों के गरजने की तरह तालियां गड़गड़ा उठीं. मैंने नजर उठायी, तो देखा कि चंपाकली नेता जी के गले में बड़ा-सा फूलों का हार डाल रही है—चंपा. मेरी आंखें फटी की फटी रह गयीं. चंपा यहां कैसे आ गयी? चंपा का यहां पर क्या काम? गुण्डों की रानी, पुलिस वाले भी जिसके नाम से थर्राते हैं, भठियारिन, कलारिन, जुआ खिलाना जिसका काम, जिसने पहले चंदू को घर से निकलवाया और फिर एक रात अपने आदमी की बोटी-बोटी कटवाकर चील-कौओं को खिला दी और कोई चूं तक न कर सका...

मेरा सर उड़ा जा रहा था. दूध बिलोने से मक्खन के बदले यह कीट कैसे ऊपर आ गयी. एकाएक मुझे बड़ी थकान मालूम

हुई. लगा, जैसे मेरे भीतर अब कहीं कोई जान, कोई रोशनी नहीं बची और मैं... इसी दम गिरकर ढेर हो जाऊंगी. लेकिन मैं गिरी नहीं, ऊंधती-सी खड़ी रही. मंच की तरफ से आती हुई उखड़ी-उखड़ी सी आवाजें मेरे कानों में पड़ती रहीं, जैसे बहुत सी मधुमक्खियां एक साथ भनभना रही हों.

इसी तरह ऊंधते-जागते पता नहीं कब मेरी आंख लग गयी और मैंने एक सपना देखा. सपना क्या था...बाइस्कोप था, जैसा शुबराती गली के बच्चों को दिखता फिरता है-गोले में आंख लगा लो और देखे जाओ, तस्वीरें एक के बाद एक.

एक बहुत डरावना, काला, उदास, मटीला सूरज, जिसके इर्द-गिर्द मकड़ी का जाला है.

भांय-भांय करती हुई ऊसर-बंजर, भूरी धरती, जिसका कहीं ओर-छोर नहीं है, वैसे ही जैसे भेड़-बकरियों की उस लंबी-लंबी कतार का, जो सर झुकाये रेंगती चली जा रही हैं.

बीच सड़क पर एक गाय बैठी है. एक कौआ उसके घाव पर बैठा चोंच मार रहा है.

एक सूखा कुआं, जिसके तले में एक बूंद पानी नहीं है.

आसमान से बात करता हुआ बबूल का एक मोटा मनावर पेड़, जिसमें एक पत्ती नहीं है, किसी राक्षस के कंकाल जैसा.

कोढ़ के जख्म जैसे ढेरों बुझे हुए कोयले, यहां से वहां तक.

एक औरत सीना ताने बाजार में बैठी है. शायद यही नंगी धोबन है. सैकड़ों साल में भी वह बुढ़ी नहीं हुई. उसके आसपास बहुत से लोग मंडरा रहे हैं. उसके मुंह से राल टपक रही है.

बेहद खूबसूरत एक कश्मीरी सेब, जिसमें कीड़े पड़ गये हैं.

बहुत से लोग खड़े हैं, जिनमे से मैं किसी को नहीं पहचानती. और एक सान रखने वाला दड़ियल आदमी उनके पुराने चाकुओं पर सान रख रहा है.

हिजड़ों की एक टोली, जो खूब भाव बता-बताकर नाच रही है.



□□

लघुकथा

कुक्कू

डॉ. गीता गीत

कुक्कू, दीनदयाल जी के तीन बेटों में से दूसरे नंबर का बेटा है. उसने उच्च जाति की लड़की से प्रेम विवाह किया है. दीनदयाल और उनकी पत्नी वैसे तो सीना ताने लोगों से कहते फिरते हैं, बहू तो उच्च घराने की है, परन्तु मौका पाते ही बहू को प्रताड़ित करने का एक भी मौका नहीं छोड़ते. एक दिन किसी बात पर खफा होकर दीनदयाल बहू से बोले-तेरे मां-बाप ने कुछ नहीं सिखाया है, हमारा ही बेटा मिला था फांसने को. हम अपनी जाति में शादी करवाते, तो लाखों का दहेज मिलता.

रोज-रोज यही बातें सुनते-सुनते बहू से रहा नहीं गया. बोली हां-पापा जी, मेरे मां-बाप ने सबसे प्रेम करना ही सिखाया है. अब तो दीनदयाल जी का क्रोध सातवें आसमान पर पहुंच गया. शोर सुनकर अड़ोसी-पड़ोसी इकट्ठा हो गये. एक बूढ़ी माता ने पूछा-बहू की जात क्या है? तभी कुक्कू वहां आ गया और माजरा समझकर बोल पड़ा-माताजी, मैं बताता हूं-बहू की जात क्या है? बहू की जात है, 'इंसानियत'. इसे विरासत में यही मिला है. और फिर पिता की ओर इशारा करके उसने कहा-अब आप इनसे पूछिये, इन्हें विरासत में क्या मिला? और ये क्या देंगे विरासत में? इनकी जात क्या है?

सम्पर्क: 1050, सरस्वती निवास

शक्ति नगर, गुप्तेश्वर, जबलपुर

कुण्डलिया

राकेश भ्रमर

गेहूं चावल से भरे, सरकारी गोदाम.
अब कोई शुबहा नहीं, चढ़ जाएंगे दाम.
चढ़ जाएंगे दाम, आम जनता रोएगी,
एक जून की रोटी के हित मिट जाएगी.
लगी हुई सरकार फालतू बस कामों में,
सड़ जाएगा अन्न, आज फिर गोदामों में.

□□

रोवन शास्त्र

मंगल कुलीजन्द

मानिए या न मानिए—रोवन शास्त्र बेशुमार कीमती वस्तु है, इसको ठीक ढंग से उपयोग करने वाला मनुष्य बहुत तेजी से बड़ी से बड़ी समस्याओं को सुलझा रहा होता है. स्वयं को बुद्धिजीवी मानते कुछ लोग ढिंढोरा पीटते हैं कि 'रोना बहुत बुरा है. बहुत बुरा है.' पर जनाब ये तो बताइए ये बुरा कैसे हुआ? जबकि बच्चे के जन्म के समय उसके परिवार और सगे सम्बन्धियों के चेहरों पर उस समय खुशी के गेयर डांस करते हैं जब बच्चा पहली बार रोता है. फिर वे बुरा कैसे हुआ जबकि जिन्दगी की शुरुआत रोने के साथ दूसरों की खुशी प्रदान करने से होती है.

रोवन शास्त्र के गुणों की लंबी सूची की महानता को समझते ही डॉ. मंगूराम बीमारी ने मरीजों का इलाज करने में...हस्तोपैथी, सुयाहापैथी, धागोपैथी, तबीजोपैथी के साथ रोनोपैथी को भी शामिल कर लिया है. अधिकतम वो ये नुस्खा महिला मरीजों पर अजमाते हैं. रोने के ढंग, रोने के मुनाफे, रोने की किस्में, रोते वक्त ध्यान में रखने वाली बातें आदि सभी की जानकारी देकर वो मरीज के मस्तिष्क-खजाने को मालामाल कर देते हैं. डॉ. मंगूराम का मानना है कि रोने से मरीज का महत्व बढ़ जाता है. परिवार के सभी सदस्यों के कान मरीज की तरफ रहते हैं. उसने थोड़ी सी 'हाय' करी नहीं—सारा परिवार भागते आ जाता है—कोई टांगें दबाता है और कोई खाने-पीने का सामान आगे रखता है. यदि मरीज बच्चा हो तो उसके पास लोरी और वायदों का हमारे नेताओं की तरह अम्बार लगा देते हैं. डॉ. मंगूराम एक और बात बताना नहीं भूलते कि इस का प्रयोग सही समय और सही व्यक्ति पर ही करना चाहिए. हां! पति नाम के जीव पर इसे विश्वास के साथ आजमाया जा सकता है और वहां सफलता भी शत-प्रतिशत मिलेगी. सास और ननद पर तो इसे भूल कर भी प्रयोग नहीं करना चाहिए. वहां पर तो 'आ बैल मुझे मार' वाली स्थिति हो जाती है.

जैसे हमारे यहां महंगाई केवल बढ़ती ही नहीं, फौरन फैलती भी है. उसी तरह रोवन शास्त्र का घेरा भी दिन-रात विशाल हो रहा है. पहले केवल व्यापारी लोग ही 'मर गये, मर गये' का राग अलापते थे. जबकि वो सांस भी नोटों के गड्डी (गुटी) में बैठ कर लेते थे. पर अब हमारी बड़ी-बड़ी जिम्मेदारी भी रोवन शास्त्र के अक्षर-अक्षर की रट लगाये हुए हैं. वर्षा, तूफान अभी दो हजार

किलोमीटर दूर होता है, और वो पहले ही चिल्लाने लगते हैं, 'मर गये भई, मर गये, सभी फसलें तबाह हो गयीं, कुछ नहीं बचा. कहने का तात्पर्य—वो रोने-पीटने में व्यापारियों को भी मात दे गये. पर मित्रों रोना चाहिए भी—जब सरकारें ग्रांटें, सुविधायें, कर्ज रोने से ही देती है, तो रोना चाहिए भी और रोने का नाटक भी करना चाहिए.

अब तो सरकारें भी बढ़िया ढंग से रो लेती हैं. कोई माई का लाल ये नहीं बता सकता कि सरकार का रोना असली है अथवा नकली. सरकारों का कहना है कि प्रतिदिन हड़तालें, धरने, मार-धाड़, टंकी-चढ़ाई, कोई कहता है हमारा वेतन बढ़ाइए, कोई कहता है, कर्ज माफ कीजिए, कोई सड़कें मांगता है, तो कोई नौकरी. आप ही बताइए हम किन-किन का सिडी-सियापा करें? खजाना खाली हुआ पड़ा है. हमारे ऊपर की कमाई प्रतिदिन कम होती जा रही है—अब तो हम हमारे रिश्तेदारों के लिए भी कुछ नहीं कर पाते. एक ये प्रेस वाले हैं...हमारा दामन ही नहीं छोड़ते. हम ने आप ही कांटे बो लिये हैं...ये आर.टी.आई. देकर! ऐरा-गैरा नत्थू खैरा, हमारे पोउड़े फरोलने लगा है. ऊपर से दुनिया के शहनशाह हर रोज घूरते हैं, हमारी पालिसी लागू करो वरना तिहाड़ की तैयारी करो—अब आप ही बताइए हम रोए न तो क्या करें?

'रोए बिना तो मां भी दूध नहीं देती' बहुत ठीक है. यदि रोने से मां का मीठा-मीठा गुणों से भरपूर जीवन-रक्षक रतन मिलता है तो रोना बुरा कैसे हुआ? इसी बात पर अमल करते हुए आज हमारे यहां के बड़े-बड़े अफसर, जिन की जीभ से निकला एक-एक शब्द करोड़ों की गड्डी बन जाता है, वो भी रो रहे हैं. पर उनका रोना सीधा दृष्टि से जुड़ा हुआ है, क्योंकि उनके नयनों को चौबीस घण्टे भरम होता रहता है कि उसके कुलीग के घर की दीवारें दिन-ब-दिन ऊंची होती जा रही हैं. और इसी रोवन शास्त्र का कमाल देखिए कि उनके शरीरों के नैनों-सैलज में अथाह स्फूर्ति आ जाती है और वो नोट छापने वाली मशीन ही बन जाते हैं.

जब कभी मनुष्य चुपके से रोता है तो उसके आंसू भीतर ही जम्ब होते रहते हैं. पर कभी-कभी आंसुओं की बरसात हो जाती है और ये बरसाती आंसू बड़े कारगर होते हैं. आजकल मगरमच्छी आंसू बहाने का जमाना है, क्योंकि आज नकलची युग है. हर एक वस्तु नकली बन रही है, और जोर-शोर से चल रही है. ग्लोबलाइजेशन का बाजारू युग है. वस्तु पर रंग-रोगन होना चाहिये, फिर बेशक आप कूड़ा-कचरा सोने के भाव बेच लो. दूसरी बात आज नकली आंसू मार्केट में मिल जाते हैं, खरीदिये, आंखों में डालिए, अपना काम निकालिये और चलते बनिएं.

रोन का पाठ्य पढ़ाने में टी.वी. चैनलों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता. प्रातः काल से सांयकाल पांच बजे तक,

घरेलू कंजर-कलेशों का कोई उपाय ढूंढ कर बताने की जगह ऐसे अटपटे सीन दिखायेंगे कि शाम को काम खत्म कर, घर में पहुंचे पति के गले मिल, पत्नी रो-रो कर अपना मन हल्का करती है. अंशकित पति के कई बार पूछने से मुश्किल से बताएंगी कि आज के सीरीयल में नायिका की हालत को देखकर आंसुओं को आंखों में दबाकर बैठी आपका इन्तजार कर रही थी, कि आप कब घर आएँ और मैं आपके गले मिल रो कर अपना मन हल्का करूं!

सरकारी दफ्तरों में रोवन शास्त्र उन कर्मचारियों के लिए बड़ा उपयुक्त है जो मेहनत जैसे 'कुत्ते-काम' से कोसों दूर रहना चाहते हैं. जैसे ही कोई काम करने की नौबत आन पड़ी, अफसर के पेश होते ही चेहरे की आकृति चाय में भीगे रस जैसी बना लेते हैं और आंखों में आंसू ऐसे दिखाई देते हैं जैसे कुएं में मेंढक तैर रहा हो. देखिए न अफसर का मन कोई पत्थर का तो होता नहीं क्योंकि वो भी धन-टोकरेँ खाकर नर्म पड़ा होता है और इसीलिए कर्मचारियों को प्रतिदिन काम से छुटकारा मिल जाता है. बापू गांधी की तस्वीरों को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए रोवन शास्त्र चुंबकीय काम करता है, क्योंकि उन दोनों का संबंध घी और खिचड़ी जैसा है. देखो न घरवाली रोती है, पति की जेब से पैसे निकलवाने के लिए, लोग रोते हैं, नेता से काम करवाने के लिए,

और हमारे देश के नेता रोते हैं, विकासशील देशों से टूटे भरवाने के लिए. अब तो धार्मिक स्थलों पर भी रोवन शास्त्र पूरी तरह कब्जा किए हुए हैं. आम आदमी जाता है, वहां मन की शांति प्राप्त करने के लिए. पर वहां बैठे धार्मिक ठेकेदार लोगों से कहते हैं "आपकी दुर्दशा देखकर हमें रोना आ रहा है." "ये माया नागिन तुम्हें जकड़े हुए है, इसको हमारे पास भेज दो फिर देखना हम कैसे इसका गला दबा कर रखेंगे." लोगों को नकों का भय दिखाकर रोने के लिए विवश करते रहते हैं.

दुनिया के सभी राष्ट्रों पर रोवन शास्त्र की अब तो पकड़ है. संसार के सबसे शक्तिशाली देश भी आर्थिक मंदी का रोना रो बैठते हैं. प्रति वर्ष मुनाफे की थोड़ी सी कम हुई दर को लेकर ऐसा विलाप करते हैं कि उनको देखकर गरीब देशों का रोना वैसे ही निकल जाता है.

इसलिए मित्रों रोने को बुरा न मानिए- ये तो काम निकलवाने का सबसे बढ़िया ढंग है. इसका उपयोग करते रहो.. वैसे रोना सेहत के लिए अच्छा भी होता है...पर कभी-कभी.

□□

लघुकथा

बंटवारा राजेश माहेश्वरी

अनंत और वसंत दोनों सगे भाई थे. उनके पिता बहुत संपन्न थे. पिता की मृत्यु के बाद सम्पत्ति के बंटवारे को लेकर उनके बीच विवाद उत्पन्न हो गया. दोनों भाई अधिक से अधिक सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमा रहे थे.

उनके घर संत हरिदास का आना-जाना था. सम्पत्ति के विवाद के लिए दोनों ने उनसे सलाह मांगी. संतजी ने कहा, "मैं एक उपाय बताता हूं. उसके अनुसार आप दोनों अपनी पैतृक सम्पत्ति का सही-सही बंटवारा कर सकते हैं."

दोनों भाई ध्यान से उनकी बात सुन रहे थे. उन्होंने आगे कहा, "आप दोनों एक दूसरे को क्या देना चाहते हैं, इसे लिखकर समाज के वरिष्ठजनों एवं रिश्तेदारों के सामने बता दें. वह स्वयं सम्पत्ति का बंटवारा कर देंगे."

इसके बाद दोनों भाई मंथन में जुट गये. उनके मन में विचार आया कि अगर वह अपने भाई को कम सम्पत्ति देने की

बात लिखकर समाज और रिश्तेदारों के सामने रखेंगे, तो उन्हें धनलोलुप समझा जाएगा. बहुत सोच-विचारकर नियत तिथि पर दोनों भाइयों ने अतिथियों के सामने अपने मन की बात लिखकर रख दी. जब उनके लिखे गये ब्यौरों को देखा गया तो यह तथ्य सामने आया कि दोनों भाइयों ने सम्पत्ति का बिलकुल सही और उचित बंटवारा किया था.

उस समय संत भी वहां उपस्थित थे. उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "देखा, जब तक आप दोनों के मन में 'यह मेरा है, वह मेरा है' की भावना थी, तब तक ज्यादा से ज्यादा पाने की लालसा थी, परन्तु जब मन में यह भावना आई कि 'वह तुम्हारा है', मन से लोभ भी चला गया. मन में ईमानदारी और संतुष्टि का भाव अपने आप आ जाता है. यह सुनने में आसान लगता है, परन्तु व्यवहार में लाना कठिन है."

सभी लोग संतजी की बात ध्यान से सुन रहे थे. उन्होंने चलते-चलते कहा, "मन में सदा यह भाव रखो कि ईश्वर हमें अधिक लेने की नहीं देने की शक्ति प्रदान करे. सुख स्वमेव तुम्हारे जीवन में आ जाएगा."

सम्पर्क: 106, नयागांव, रामपुर, जबलपुर (म.प्र.)

□□

चेहरा उतर गया

रमेश मनोहरा

आखिर ईमानदार अधिकारी निर्मलकुमार 1000 रुपये की रिश्वत लेते हुए लोकायुक्त अधिकारी द्वारा पकड़े गये. यहीं आज के अखबारों में महत्वपूर्ण खबर थी. जबकि उनकी छवि तो शहर में ईमानदार अधिकारी की थी. उसी ईमानदारी के कारण 15 अगस्त के दिन सार्वजनिक स्थान पर भव्य समारोह में उनको सम्मानित किया गया था. प्रमाण-पत्र देकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी. जिस अधिकारी ने उन्हें ईमानदारी का प्रमाण दिया, उनके साथ फोटो खिंचवाया. इस तरह उन्होंने अपना सम्मान करवाया. आजकल सम्मान किया नहीं जाता है, कराया जाता है. इसी सिद्धांत को अपनाकर उन्होंने सम्मानित अधिकारी होने को गौरव हासिल किया है. अब लोग उन्हें एक ईमानदार अधिकारी के नाम से जानने लगे हैं. वहीं सम्मानित वाला फोटो मढ़वाकर अपने कार्यालय में अपनी कुर्सी के पीछे दीवार के सहारे इस तरह लगा दिया कि उस फोटो के पीछे कुछ रखा जा सके.

इस तरह ईमानदार अधिकारी के रूप में उन्होंने अपनी पहचान बनाई. ऊपर से उनका चेहरा जरूर ईमानदार का था मगर भीतर का चेहरा भ्रष्ट और बेईमान बना हुआ था. फाइल देखकर उसका मूल्य निर्धारित होता था. निर्धारित मूल्य अदा करने पर फाइल निपट जाती थी. जो फाइल का मूल्य अदा नहीं करता था, उस फाइल पर ऑब्जेक्शन लगाकर वापिस कर दिया जाता था. जो भी उन्हें रिश्वत मिलती थी, वे उसे चित्र के पीछे रख दिया करते थे. शाम को जाने से पहले सारे पैसे जेब के हवाले कर लिया करते थे. इस हेतु उन्होंने कुछ दलाल भी पाल रखे थे. जो इधर-ऊधर से दलाली किया करते थे. मगर ऊपर से वे अब भी ईमानदार होने का ढोंग रचते थे. प्रेम से ऐसी मीठी बातें करते थे कि सामने वालों को लगता है, बहुत ईमानदार अधिकारी हैं.

जिन दलालों को उन्होंने पाल रखा था उनमें से एक दलाल से वे अकड़ गये. फाइल को निपटाने हेतु 2000 रुपये की राशि तय हुई. वह दलाल 1000 की राशि देकर फाइल निपटाना चाहता था. उसने 1000 उनको भी दिये थे. मगर इसी बात को लेकर ईमानदार अधिकारी और उसमें तनातनी हो गई. वह उनका विश्वसनीय दलाल अविनाश था. अतः बोला-सर मैं पहले ही आपको 1000 दे चुका हूं. और मैं 1000 देने में असमर्थ हूं. मेरी देने की हैसियत नहीं है.

“देखो अविनाश मुझे 1000 रुपये और चाहिये. जिस दिन 1000 ले आओगे फाइल ले जाना.” निर्मलकुमार ने यह कहकर गेंद अविनाश के पाले में फेंक दी. वे यह भी जानते हैं कि अविनाश उनके लिये ऐसी सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी है जो कहीं से भी व्यवस्था करके देगा. तब अविनाश ने भीतर ही भीतर

योजनाबद्ध तरीके से जो योजना बनाई थी. उसी के तारतम्य बोला- ठीक है सर व्यवस्था हो जाएगी. अब आप जिद्द कर रहे हो तो कही से भी 1000 रुपये की व्यवस्था करके दूंगा.

यह बात वहीं समाप्त हो गई. उसके ठीक 4 दिन बाद योजनाबद्ध तरीके अविनाश ने 1000 रुपये निर्मलकुमार के हाथों में थमा दिये. उसी तस्वीर के पीछे उन्होंने वे नोट छिपा दिये. तभी लोकायुक्त टीम पहुंच गई.

लोकायुक्त अधिकारी को देख निर्मलकुमार घबरा गए तस्वीर के पीछे छिपे नोटों को निकालने के लिये कहा. तब निर्मल कुमार जी बोले-नहीं सर, मैंने कोई पैसा नहीं छुपाया.”

“झूठ मत बोलो 1000 रुपये लिये अविनाश से.” लोकायुक्त अधिकारी ने डांटते हुए कहा.

“रिश्वत से मेरा कोई संबंध नहीं है, सर!” निर्मलकुमार गिड़गिड़ाते हुए बोले-“मैं तो एक नेक ईमानदार अधिकारी हूं.”

“नेक और ईमानदार?” व्यंग्य से मुस्कुराकर लोकायुक्त अधिकारी बोले-“इस जमाने में ईमानदारी के भेस में बेईमानी के चेहरे छिपे रहते हैं. उनमें से तुम भी एक हो. ऊपर से ईमानदारी को चेहरा लगाने से कोई ईमानदार नहीं हो जाता है.”

“मगर आपके पास क्या प्रमाण है कि मैंने अविनाश से 1000 रुपये की रिश्वत ली.”

“प्रमाण, बिना प्रमाण के हम कहीं भी हाथ नहीं धरते हैं.” उस अधिकारी ने यह कहकर वह टेप सुना दी जिसमें अविनाश और निर्मलकुमार के बीच चार दिन पहले रिश्वत का सौदा हुआ था. इसी परिपेक्ष्य में निर्मलकुमार खुद के संवाद सुनकर हक्का-बक्का रह गये. तब टेप बंद करते हुए अधिकारी बोले-“अब तो यकीन हो गया. यह आवाज आपकी है. लाओ निकालो वह 1000 रुपये.” तब निर्मलकुमार ने उस तस्वीर के पीछे रखे 500-500 के दो नोट निकालकर दे दिये. निर्मलकुमार के जब हाथ धुलवाये गये, पानी लाल हो गया. उन नोटों पर पहले से ही फिनाल्पथलीन पॉवडर लगा दिया गया था.

उन पर समस्त शासकीय प्रक्रिया पूरी कर ली गई. उन्हें 25000 रुपये के मुचलके पर छोड़ दिया गया. उन पर केस दायर कर दिया गया. सारे पत्रकारों को बुलाकर विभिन्न कोणों से फोटो खिंच गये. अंत में निर्मलकुमार ने कहा-“मैं निर्दोष हूं सर, मुझे जान-बूझकर फंसाया गया.”

“हर अपराधी पहले यहीं कहता है. आपका ईमानदारी का चेहरा उतर गया है.” समझाते हुए अधिकारी बोला-“ईमानदारी का प्रमाण पत्र लगाने से जनता की आंखों में धूल नहीं डाली जा सकती है. ईमानदारी के लिये वैसा बनना भी पड़ता है. समझे मिस्टर.”

संपर्क:- शीतला गली, जावरा (म. प्र.) 457226
जिला रतलाम मो.- 9479662215

दो गजलें : शकेब जलाली

आ के पत्थर तो मिरे सहन¹ में दो-चार गिरे.
जितने उस पेड़ के फल थे पस-ए-दीवार² गिरे.

ऐसी दहशत थी फजाओं में खुले पानी की,
आंख झपकी भी न थी हाथ से पतवार गिरे.

मुझे गिरना है तो मैं अपने कदमों में गिरूं,
जिस तरह साए-ए-दीवार³ पे दीवार गिरे.

वक्त की डोर खुदा जाने कहां से टूटे,
जिस घड़ी सर पे ये लटकी हुई तलवार गिरे.

क्या कहूं दीदा-ए-तर⁴ ये तो मिरा चेहरा है,
संग कट जाते हैं बारिश की जहां धार गिरे.

1. आंगन, 2. दीवार के पीछे, 3. दीवारों की छाया, 4. भीगी हुई आंख



वहां की रोशनियों ने भी जुल्म ढाये बहुत.
मैं उस गली में अकेला था और साये बहुत.

किसी के सर पे कभी टूट कर गिरा ही नहीं,
इस आसमां ने हवा में कदम जमाये बहुत.

न जाने रूत का तसरूफ¹ था या नजर का फरेब,
कली वही थी मगर रंग झिलमिलाये बहुत.

जो मोतियों की तलब ने बहुत उदास किया,
तो हम भी राह से कंकर समेट लाये बहुत.

शकेब कैसी उड़ान अब वां पर ही टूट गये,
कि जेर-ए-दाम² जब आये थे फड़फड़ाये बहुत.

1. परिवर्तन, 2. जल के नीचे

□□

कविता : केशरी प्रसाद पाण्डेय 'वृहद'

रोशनदान

घर
रोशनदान से
अलंकृत होता है
किन्तु
मेरे घर के रोशनदान में
चिड़ियों ने
तिनका-तिनका चुन के
अपना घोंसला बना लिया है.
रोशनदान पर
अधिकार जमा लिया है.
अब,
उसमें एक नया जीवन
पल रहा है
बाहर के प्रकाश को रोककर
अन्दर चिड़ियों के चूजों ने
प्रकाश को अवरुद्ध कर रखा है
दूसरे रोशनदान को
मकड़ियों ने अपने जाल में
फंसा रखा है
शेष भाग छिपकली के अधीन है
प्रजनन के लिए
और फिर एक नया जीवन
पालने के लिए
दोनों रोशनदान
चिड़ियों और छिपकली
के हवाले हैं
अब बाहर की रोशनी
भीतर नहीं आती
भीतर का द्वन्द्व
बाहर नहीं जाता
मैं सोचता हूँ
बाहरी प्रकाश पुंज के लिए
रोशनदान के उधर

गजल

सनातन कुमार वाजपेयी 'सनातन'

प्रेम के गांव की राजरानी गजल.
राज दरबार की शुभ निशानी गजल.

नाचती थी मुदित घुंघरू पैरों में सजे,
आज दुखियों की कहती कहानी गजल.

तोड़ बंधन सभी राज दरबार के,
आम जन की बनी जानी मानी गजल.

अब न उर्दू के दामन को पकड़े है यह,
हिन्दी भाषा की अपनी सुहानी गजल.

दायरा आज व्यापक गजल का हुआ,
अब 'सनातन' नहीं है पुरानी गजल.

सम्पर्क: पुराना कछपुरा स्कूल, गढ़ा,
जबलपुर-482002 (म.प्र.)
मो: 9993566139

□

एक नई सुरंग कर दी जाय
नव प्रकाश के लिए
क्योंकि जालों को हटाना
और घोंसलों को मिटाना
हिंसा होगी
अपराध है
अतिक्रमण है
घोंसला को मिटाना
एक छोटे से रोशनदान के लिए!

सम्पर्क: सृजन कुटी, अर्पण नगर,
न्यू जगदम्बा कॉलोनी, जबलपुर (म.प्र.)
दूरभाष: 0761-2903109

□□

कविताएं: राजा चौरसिया

मैं चुप हो गया

(1) एक दिन

मैंने अपने पोते से कहा

झूठ मत बोला करो

लेकिन जब

पोते ने पूछा

“क्या आप झूठ नहीं बोलते हैं?”

यह सुनते ही तत्काल

मैं चुप हो गया.

(2) किसी मंच से

मैं उपदेशामृत की वर्षा कर रहा था

लेकिन बीच में

जब एक श्रोता ने कटाक्ष किया

“पर उपदेश कुशल बहुतेरे”

तब मैं चुप हो गया.

(3) वृक्षारोपण के बारे में

मैंने कहा—“तन मन धन, सबसे ऊपर वन

वन से जी अरु जी से वन है

वृक्ष लगाओ

बचना है तो पर्यावरण बचाओ”

यह सुनकर जब एक ने प्रश्न किया.

“आपने स्वयं कितने वृक्ष लगाए हैं?”

तब मैं चुप हो गया.



भ्रष्टाचार उवाच

जब-जब हमारे

बड़े मुंह, पद

और कद वाले नेता लोग

भ्रष्टाचार को

जड़ से मिटाने का

जोश दिखाते हैं

अर्थात्

जनता को तसल्ली के लिए

गुड़ की जलेबी दिखाते हैं

तब-तब भ्रष्टाचार

रावण जैसा

ठहाका लगाता है बार-बार

और कहता कि यारों

मुझे मिटाने की

गुहार मचाकर

अपना मजाक मत उड़ाओ

खत्म करने के स्थान पर

मुझे कम करके तो बताओ!

सम्पर्क: उमरियापान, जिला-कटनी (म.प्र.)-483332

□□

क्षणिकाएं
केदारनाथ 'संविता'

(1) रोटी:

आकाश में तपता सूर्य
तवे की रोटी,
महंगाई की तीक्ष्ण किरणें
छूने न देतीं.

(2) इशतहार

सरकारी बंगले की
विशाल दीवार पर
एक इशतहार लगा
“यहां इशतहार लगाना मना है.”

(3) पंकचर परिवार

बड़ी उदासी में
अपनी पत्नी से बोले
“न सहता यदि यौवन में
तुम्हारे फूलों की मार?
तो क्या कभी झेलता
ऐसा पंकचर परिवार?”

(4) विवशता

दुखों की कटीली टहनियां
खुदकुशी की मजबूरियां
मौन सहता है
मेरे अंदर का जिरहबख्तर.

मजबूरियां

डॉ. रंजीत रविशैलम्

आती हैं मुसीबतें
हमारे जीवन में
व्यर्थ के अभिमान से.
अपनाते जाते हैं इनसान
अपनी ही मजबूरी में
ढेर सारी कामनाएं
उड़ना चाहते हैं
पर फैलाकर वह
खुले आसमान में!
पर
मन में संत्रास है-
मनुष्य बहुत कुछ
पा लेना चाहता है
और इन्हीं इच्छाओं/
कामनाओं के बीच
जहां वह पहुंचना चाहता है
वहां नहीं पहुंच पाता
उसके अरमान
उसे कहीं और
खींच ले जाते हैं....



सम्पर्क: पुलिस चौकी रोड, लालडिग्गी
सिंहगढ़ गली (चिकाने टोला)
मीरजापुर-231001 (उ.प्र.)
मोबाइल: 9935685068

Address: RAVISAILAM,
ATTARAMOOLA,
KATTACHAL KUZHI. P.O.
BALARAMAPURAM
THIRUVANANTHA-DIST
KERLA-695501
MOB: 088281494226



कविता: सरिता

सहती रही मैं

अशकों के संग पिघलती गई मैं
कांटों के रास्ते पे चलती गई मैं,
अंगारों सा जीवन मेरा
घुट-घुट के उसको सहती रही मैं.

गिरती रही मैं, लड़ती रही मैं,
दूजों की गलती पे सुनती रही मैं,
बवंडर सा हर पल मेरा
घुट-घुट के उसको सहती रही मैं.

जीते हुए भी मरती रही मैं
रूढ़िवादिता तले दबती गई मैं,
दुःखों का साया बन गया जिस्म मेरा,
घुट-घुट के उसको सहती रही मैं.

परछाई से अपनी ही डरती रही मैं
हर एक चोट से थमती गई मैं,
जख्मों से भरा मन मेरा
घुट-घुट के उसको सहती रही मैं.

दुखों को अपने छुपाती रही मैं
अपनों के जीवन सजाती रही मैं,
स्त्री का जीवन गमों का पिटारा
घुट-घुट के उसको सहती रही मैं.

सम्पर्क: 1155/3rd SPG, काम्प्लेक्स,
द्वारका, सेक्टर-8, नई दिल्ली-110071

कविता: रुचि

खुलते और उड़ते पंख

निकली हूं घोंसले से बाहर
विश्वास में आया नया निखार
हौसला है, अब मंजिल जरा संवार.

पंख खोल के तो देखूं,
शंख सी बोल के तो देखूं.

है बहारों की बहार
इस घोंसले से बाहर
हौसला है एक, सपने हजार!

उड़ चुकी है उम्मीदों की डोर
उत्साह उमंग मेरे छोर!
अब जरा खुशी मुस्कान में घोल.

जाना है मुझे सरोवर का रूप निहारने
जाना है मुझे मंजिल फूल-सी सवारने.

धूप नहीं लगेगी
नीला अंबर मेरा छाता है
मैं धुन बनाती, वह मीठी रागिनी गाता है.

चुनरियां बनी ठंडी हवाएं
तरंगें बनी मेरी पनाहें.

खुलते पंख काटे जा सकते हैं
उड़ते हौसले नहीं
उड़ गयी मैं तेरे घोंसले से यही
नहीं जानती मैं,
क्या है गलत क्या है सही?



दो कविताएं

डॉ. भावना शुक्ल

मां

मां, ममता है, आस्था है, विश्वास है.
मां, जीवन की धरती है, संभावनाओं का आकाश है.
मां खुशियों का बाग-बगीचा है.
मां रोशनी का दरीचा है.
मां प्रेम है, अनुरक्ति है.
मां संतान की अथाह शक्ति है.
मां वेद है, पुराण है.
मां दुआ है, कुरान है.
मां, ईश्वर नहीं, ममता की मूरत है.
हमें भगवान से भी ज्यादा मां की जरूरत है.
मां अद्वितीय है, अनूपा है
गायत्री रूपा है.



चेहरे

चेहरे जो
अक्सर
अलग नजर आते हैं.
चेहरे ही
पढ़ते हैं
मनु की भाषा
है
सबकी अलग-अलग
परिभाषा!
एक के चेहरे पर है
आशा
दूसरे के चेहरे पर
झलकती है
निराशा!
देखने से लगता है
चेहरे पर है
कौन-सा भाव
न जाने है
उसके किस बात का
अभाव!
खिली चेहरे पर मुसकान
अनजाने चेहरों से
हुई पहचान

सम्पर्क: WZ/21हरिसिंह पार्क, मुल्तान
नगर, नई दिल्ली-110063
मो: 9278720311

□□

संकट में देश का भविष्य

रीमा तिवारी

‘बच्चे होते मन के सच्चे’ इस पंक्ति को लिखने वाले ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि ईश्वर की इस सुन्दर कृति पर कभी आफत भी आएगी. बचपन की अठखेलियां करते बच्चे भगवान का रूप माने जाते हैं, किन्तु समाज में ही रह रहे कुछ दरिन्दे देश के भविष्य को संकट में डाल रहे हैं. बच्चों को जुल्मो-सितम से बचाने को सरकार ने कानून बनाकर अपनी गम्भीरता का परिचय तो दिया है लेकिन सोचने वाली बात यह है कि जिन बच्चों को हम अपना भविष्य मानते हैं उनके प्रति हमारे समाज का नजरिया क्यों बदल चुका है, बाल-अपराधों के आंकड़े हमारा मुंह क्यों चिढ़ा रहे हैं?

बच्चे हमारा भविष्य हैं. राष्ट्र की सम्पत्ति हैं. सभ्य समाज के निर्माण की पूंजी हैं लेकिन अफसोस उनका बचपन दांव पर है. वर्तमान में बाल अपराधों का ग्राफ इस कदर बढ़ चुका है कि देश की सर्वोच्च अदालत को उनकी सुरक्षा, स्वास्थ्य और शिक्षा को लेकर लगातार चिन्ता जतानी पड़ रही है. सरकारी आंकड़ों पर यकीन करें तो बीते तीन साल में लगभग दो लाख से अधिक बच्चे लापता हुए हैं जिनमें से अधिकतर बच्चों का इस्तेमाल बाल मजदूरी और देह व्यापार जैसे धंधों में किया जा रहा है. देश में प्रतिदिन एक दर्जन से अधिक बच्चे लापता हो रहे हैं और उनकी सुध तक नहीं ली जा रही. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट भी चीख-चीख कर बताती है कि देश में हर साल चालीस हजार से अधिक बच्चे गुम होते हैं जिनमें से अधिकांश के बारे में कोई जानकारी ही नहीं मिलती. शर्मनाक यह भी कि देश में बड़े पैमाने पर जहां बच्चे बाल मजदूरी करने को विवश हैं वहीं उनका यौन शोषण भी हो रहा है. इस असंवेदनशील कृत्य का दायरा घर-परिवार से लेकर स्कूलों तक फैल चुका है. समाज की जड़ तक पहुंच चुकी इस बुराई को दूर भगाने के लिये सरकार ने कानून तो बना दिया लेकिन जरूरी उसके अनुपालन की है. कानूनी दण्ड यदि भय, सामाजिक बुराइयों तथा आपराधिक कृत्यों पर लगाम लगाने में कारगर होता तो बालश्रम कानून लागू होने के बाद बच्चों पर होने वाले अत्याचार जरूर कम हो जाते, जो कि नहीं

हुए. देश में न केवल बाल श्रमिकों की संख्या लगातार बढ़ रही है बल्कि उनके दैहिक शोषण के मामले भी बढ़े हैं. 20 नवम्बर, 1989 को संयुक्त राष्ट्र की आमसभा में बाल अधिकार समझौते को पारित किया गया था. इस साल 20 नवम्बर को इसके 25 साल पूरे हो चुके हैं. बाल अधिकार संधि ऐसा पहला अन्तरराष्ट्रीय समझौता है जो सभी बच्चों के नागरिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों को मान्यता देता है. इस समझौते पर दुनिया के 193 राष्ट्रों ने हस्ताक्षर करते हुए सभी बच्चों को जाति, धर्म, रंग, लिंग, भाषा, सम्पत्ति, योग्यता आदि के आधार पर बिना किसी भेदभाव के संरक्षण देने का वचन दिया है. बाल अधिकार संधि पर दो राष्ट्रों अमेरिका और सोमालिया ने अब तक हस्ताक्षर नहीं किए हैं. भारत ने इस पर 1992 में हस्ताक्षर कर अपनी प्रतिबद्धता तो व्यक्त कर दी पर बच्चों को जीने का अधिकार, सुरक्षा का अधिकार, विकास और सहभागिता का अधिकार मिला हुआ है, यह हकीकत चौंकाने वाली ही है.

समय दिन-तारीख देखकर आगे नहीं बढ़ता. बाल अधिकार संधि 25 साल की हो चुकी है. इस समझौते ने भारत सहित दुनिया भर के लोगों का बच्चों के प्रति नजरिया और विचार तो बदला है, लेकिन स्थिति अभी भी काफी चिन्ताजनक है. पिछले 25 वर्षों में मानवता आगे बढ़ी है और उसने बुलंदियों को छुआ है पर अभी भी हम ऐसी दुनिया नहीं बना पाए जो बच्चों के हितों और उनके सरोकारों के लिये सुरक्षित हो. हम अपने आस-पास देखने पर पाते हैं कि छोटे-छोटे बच्चे स्कूल जाने की बजाय मेहनत मजदूरी में लगे हैं. बच्चों के लिये सबसे सुरक्षित माना जाने वाला उनका अपना घर स्कूल प्यार और शिक्षा की जगह उत्पीड़न बांट रहा है. घर में माता-पिता और स्कूल में शिक्षक बच्चों की पिटाई करते हैं. हमारा समाज बच्चियों को जन्म लेने से रोक रहा है. भारत दुनिया में 14 साल से कम उम्र के सबसे ज्यादा बाल श्रमिकों वाला देश है. अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के मुताबिक दुनिया भर में तकरीबन बीस करोड़ से अधिक बच्चे जोखिम भरे कार्य करते हैं और

उनमें से सर्वाधिक संख्या भारतीय बच्चों की है. हमारी हुकूमतों ने तो फिर भी बच्चों के पक्ष में कुछ सकारात्मक पहल की है लेकिन एक समाज के रूप में हम अभी भी बच्चों और उनके अधिकारों को लेकर गैर जिम्मेदार और असवेदनशील ही हैं. भारत ने कुछ क्षेत्रों में अभूतपूर्व तरक्की की है. इसी वर्ष हमने मंगलयान की सफलता का जश्न मनाया है लेकिन बचपन की उजली तस्वीर पर कई दाग हैं. भ्रूण हत्या, बाल व्यापार, यौन दुर्व्यवहार, लिंग अनुपात, बाल विवाह, बालश्रम, स्वास्थ्य, शिक्षा, कुपोषण, मलेरिया, खसरा और निमोनिया जैसी बीमारियों से मरने वाले बच्चों के हिसाब से आज भारत का दुनिया के सबसे बदतर देशों में शुमार है. इसे विडम्बना ही कहेंगे कि हम एक राष्ट्र और समाज के रूप में अपने बच्चों को हिंसा, भेदभाव, उपेक्षा, शोषण और तिरस्कार से निजात दिलाने में अभी तक कामयाब नहीं हो सके हैं.

भारत द्वारा बाल अधिकार समझौते को स्वीकार करने के

बाद बच्चों की दृष्टि से उठाए गए कदमों, सफलता, असफलताओं की पड़ताल करें तो हम पाते हैं कि हम कुछ कदम आगे तो बढ़े हैं लेकिन अभी भी हमारे देश में बच्चों के विकास और सुरक्षा को लेकर चुनौतियां का पहाड़ है. यह कम दुर्भाग्यपूर्ण नहीं है कि देश में कानून का राज होने के बाद भी आपराधिक तत्व बेलगाम हैं. इसकी मुख्य वजह कानून पालन में उदासीनता है. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 में व्यवस्था दी है कि मानव तस्करी, बलात् श्रम के अलावा 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखाने और जोखिम भरे कार्यों में नहीं लगाया जाए. अफसोस करोड़ों बच्चे आज भी बाल श्रमिक के रूप में जीवन बसर कर रहे हैं.

सम्पर्क: एस.बी.आई. कॉलोनी से पहले,

फजलगंज, सासाराम, रोहतास-821115 (बिहार)

मो: 9430990167

□□

कविता

बेटा और बेटी

आशा गुसाई

एक ही मां के गर्भ से
जन्म लिया दोनों ने
उनका आपस में एक नाता है
फिर क्यों उनके साथ भेदभाव हुआ
बेटा और बेटी,
फिर क्या फर्क है दोनों में?
बेटी हुयी तो चिन्ता का भाव प्रकट हुआ
बेटे ने जन्म लिया तो कुल का दीपक है,
इस खुशी का इजहार हुआ.
बेटी तो जन्म से ही धन पराया है,
दुनिया ने नाम दिया.
बेटा सबकुछ है,
यह मान्यता मिली
तो बेटी को महत्व क्यों नहीं मिला
जबकि उससे ही यह सृष्टि रची.
फिर भी कोई वजूद नहीं

अगर बेटे की शादी हुयी
तो एक बेटी को घर लाओगे
या सृष्टि के नियम को बदलोगे
एक तरफ कुल का दीपक है
एक तरफ वंश को
आगे चलाने वाली वंशज
फिर क्यों ये भेदभाव हुआ
बेटी के जन्म पर
दुख का इजहार हुआ
एक नाव के पतवार हैं दोनों
बिना इनके सृष्टि नहीं चलती है
ईश्वर की देन है यह सब
इनमें कभी फर्क न करना.

सम्पर्क: बी. 9/142, सैक्टर-4

रोहिणी, नई दिल्ली-85

मो: 9990599362

✽

शिक्षा से महिला सशक्तिकरण

डॉ. प्रभु चौधरी

हम सभी महिला के सशक्तिकरण की बात अवश्य करते हैं परन्तु इससे पूर्व हमें सशक्तिकरण को जानना अति आवश्यक है. सशक्तिकरण को अनेक विद्वानों ने अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया है.

कैम्ब्रिज शब्दकोष ने इसे प्राधिकृत परिभाषित किया है. लोगों के संबंध में इसका अर्थ होता है उनका अपने जीवन का मुख्य अर्थ संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित करना और बनाए रखना जिससे वे अपने जीवन के विषय में उचित निर्णय ले सकें.

भारत में महिलाओं की स्थिति काफी पिछड़ी हुई है. इसलिये विगत कुछ वर्षों से प्रत्येक स्तर पर महिला सशक्तिकरण के अनेक प्रयास किये जा रहे हैं. समाज में अशिक्षा, लैंगिक भेदभाव व गिरते मूल्य, सामाजिक जातिवाद इसके प्रमुख कारण है.

सामाजिक कारण- समाज में नारी की स्थिति दयनीय है, इसका मुख्य कारण है नारी का स्थान आदरणीय अथवा सम्माननीय नहीं है. हमारा समाज पुरुष प्रधान रहा है, जिसके कारण नारी को पुरुष समाज में स्थान नहीं दिया गया है. समाज में बदलाव आयेगा तभी नारी सशक्त हो जाएगी.

अशिक्षा- अशिक्षा के कारण समाज में नारी सशक्त नहीं हो पा रही है. भारत का साक्षरता पुरुष 81.14 प्रतिशत, महिला 65.46 प्रतिशत, कुल साक्षरता भारत में 74.04 प्रतिशत, राजस्थान में पुरुष साक्षरता 80.51 प्रतिशत, महिला साक्षरता 52.66 प्रतिशत, कुल साक्षरता 67.06 प्रतिशत, केरल राज्य में महिला साक्षरता 91.98 प्रतिशत के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि अशिक्षा के कारण समाज में महिला की स्थिति विचारणीय है. समाज में बाल-विवाह, सती प्रथा, दहेज प्रथा आदि अनेक बुराईयां व्याप्त हैं. महिला शिक्षित होगी तो अपने जीवन के संबंध निर्णय ले पाएगी.

लैंगिक भेदभाव- समाज में लैंगिक भेदभाव के कारण आज

भी महिला सशक्त नहीं हो पा रही है. लिगानुपात 2011 भारत में 1000 पुरुष पर 940 महिला, राजस्थान 926, केरल में 1084, यू.एस.ए. में 1025, जापान 1055, रूस 1167 के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार महिला लिगानुसार कितना कम होता जा रहा है.

गिरते मूल्य- समाज में आज संस्कारों का अभाव होता जा रहा है. मानव मूल्य दिखाई नहीं देते. इसके कारण व्यक्ति स्वकल्याण की ही बात करता है. मुख्य रूप से इन मूल्यों राष्ट्रभक्ति, सर्वधर्मभाव, समानता, श्रम निष्ठा तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के माध्यम से महिला को सशक्त बनाया जा सकता है.

जातिवाद- देश की सबसे प्रमुख समस्या जातिवाद है. आज जातिवाद के नाम पर आपस में भेदभाव पाया जाता है. समाज विभिन्न जातियों एवं धर्म में बंटा हुआ है. इस कारण समाज में विभिन्नता है. जातिवाद महिला के सशक्तिकरण में एक बाधा है.

उपरोक्त समस्याओं के उपरांत भी वर्तमान में महिलाओं की स्थिति को देखकर उनके सशक्त होने का आभास होता है. पूर्व राष्ट्रपति महामहिम प्रतिभा देवी सिंह पाटिल, लोकसभा अध्यक्ष सुमित्रा महाजन एवं प्रमुख कांग्रेस दल की अध्यक्ष सोनिया गांधी और विदेश मंत्री सुषमा स्वराज एवं भ्रष्टाचार अभियान में मुख्य भूमिका अदा करने वाली पूर्व आई.पी.एस. अधिकारी किरण बेदी इसके जीते-जागते उदाहरण हैं. महिला सशक्तिकरण की जो बाधा है उनको दूर कर दिया जाए तो हम कह सकते हैं कि-

गुल को गुलशन न कर पायेंगे हम, जिस राह से गुजरे कुछ कांटे जरूर कम कर जायेंगे हम.

कोमल है कमजोर नहीं, शक्ति का रूप ही नारी है. जग जीवन देने वाली, मौत भी तुझसे हारी है.

भारतीय संस्कृति का इतिहास साक्षी है कि भारतीयों ने नारी जाति को हमेशा सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है. वहां दूसरी ओर दुर्गा, सरस्वती, पार्वती, लक्ष्मी आदि देवी सूचक विशेषणों से अलंकृत भी किया गया है. मनु का कथन आज भी हृदय से स्वीकार करते हैं.

यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता.

अत्यधिक प्राचीन युग में मातृ सत्तात्मक परिवार होते थे, जिसमें माता परिवार की मुखिया होती थी. उसके नाम से परिवार का परिचय होता था. कालक्रम से पितृ प्रधान परिवार

होने लगे, किन्तु मातृपद पूजनीय ही बना रहा. लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व वैदिक युग में स्त्रियों को श्रेष्ठ सामाजिक अधिकार प्राप्त थे. उसे न केवल वैदिक मंत्रों के पाठ का वरन् वेद मंत्रों की रचना करने का भी अधिकार प्राप्त था. कोई भी अनुष्ठान उसके अभाव में पूरा नहीं होता था. गार्गी, मैत्रेयी, कात्यानी, अपाला आदि नारियों ने विविध विषयों में निपुणता प्राप्त करके शास्त्रार्थ विद्या में स्वयं को प्रवीण कर लिया था. वैदिक काल में जहां नारी घर गृहस्थी तक सिमटकर रह गई. बहुपत्नीक प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा आदि कुरीतियां भी समाज में स्थान बनाने लगी. समय के साथ-साथ परिस्थितियां बदलतती गई तथा सामाजिक परिवेश बदलते गए. आचार-विचार में भी परिवर्तन होते गये.

देश में अनेक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक क्रांतियां हुई. प्राचीन मूल्यों के ढांचे लड़खड़ा गए तथा नए-नए मूल्यों का उद्भव हुआ. मध्य युग आते-आते स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में काफी हास आ गया. आदर और श्रद्धा के स्थान पर स्त्री केवल मनोरंजन की वस्तु रह गई. मुस्लिम शासन काल में नारी जाति का आधा पतन तेजी से हुआ. उस पर चाहे अनचाहे अनेक बंधन लगाए गए. उनकी स्वतंत्रता घर की चार दीवारों के भीतर सीमित हो गई. प्रत्येक क्षेत्र में नारी को आघात लगा. इस तरह नारी क्रमशः शक्ति का प्रतीक न रहकर अबला बन गई.

आवश्यकता थी कविवर पंत की इन पक्तियों को साकार करने की, जिनमें नारी को बंधनों से मुक्त करके वंदनीय बनाकर उसे जननी एवं शक्ति के रूप में स्वीकार करने हेतु उत्प्रेरित करने की.

मुक्त करो नारी को मानव, चिर वंदिनी नारी को.

युग-युग को निर्ममकारा, जननी सखी प्यारी को.

ब्रिटिश शासन काल आते-आते महापुरुषों के नेतृत्व के कारण, जहां एक ओर नारी शोषण पर प्रतिबंध लगा वहीं दूसरी ओर नारी सुधार एवं उन्नयन की दिशा में सामाजिक क्रांति भी प्रारंभ हुई. आधुनिक युग भारत में नारी उत्थान का युग था. सांस्कृतिक पुनर्जागरण काल में समाज सुधारकों और विचारकों ने नारी की दुर्दशा पर भी ध्यान दिया. स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा महात्मा



गांधी जैसे सांस्कृतिक महापुरुषों ने जिस संस्कृति को जन्म दिया, उससे नारी मुक्ति की लहर दौड़ गई अर्थात् कुप्रथा पर कानूनी रोक लगानी पड़ी. धीरे-धीरे स्त्रियों को खोए हुए अधिकार मिलने लगे. स्वतंत्रता संग्राम में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई से लेकर कस्तूरबा गांधी, विजय लक्ष्मी पंडित, सरोजिनी नायडू, सुचेता कृपलानी, कमला नेहरू आदि ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया एवं यातनाएं सही.

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी ने राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भाग लेकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है. भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी विश्व की सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक महिला मानी जाती हैं. इसी क्रम में अंतरिक्ष की कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स, खेल क्षेत्र में पी.टी. उषा, सानिया मिर्जा आदि का नाम भारतीय महिला गौरव के रूप में सर्वाधिक चर्चित है. जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राजनीतिज्ञ, विधिवेत्ता, न्यायाधीश, प्रशासक, राजदूत, कवि, चिकित्सक, वैज्ञानिक आदि के रूप में भारतीय नारी ने विशिष्ट स्थान बना लिया है. इससे यह सिद्ध होता है कि उसमें पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर घर और बाहर सभी क्षेत्रों में कार्य की क्षमता है. नारी में धृति, क्षमता, सहनशीलता, कर्तव्य परायणता आदि अनेक गुण हैं, जिनके कारण नारी किसी भी परिस्थिति में स्वयं को समायोजित करने की सामर्थ्य रखती है. नारी श्रेष्ठता कवि की इस पंक्ति से भी लंखित होती है.

एक नहीं दो-दो मात्राएं, नर से भारी नारी.

21वीं सदी में भी लिंग भेद मानव पर सिर चढ़कर बोल रहा है. यह भेद परिवार, समाज एवं राजनीति आदि सभी जगह व्याप्त है. पुरुष-नारी को प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखता है. 1996 में महिला आरक्षक विधेयक संसद में पारित होने के लिये

प्रस्तुत हुआ परन्तु पुरुष वर्ग ने अपनी मर्दाना छवि को अटल रखने के लिये कोई न कोई अड़ंगा लगाकर राजनीतिक दलों ने 33 प्रतिशत महिलाओं की उम्मीदवारी को स्वीकार नहीं होने दिया, जिसके कारण आज तक इस विधेयक पर आम सहमति नहीं हो पाई है।

इसी प्रकार सरकारी नौकरियों में भी 20 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं के लिये सुरक्षित है, किन्तु व्यवहार में देखा जाए तो ऐसा कम ही संभव हो पा रहा है। मानव संसाधन मंत्रालय पर बालिका एवं महिला विकास के लिये विभिन्न योजना आदि की घोषणा की गई है, किन्तु व्यावहारिक उपलब्धियां आमूलचूल परिवर्तन करने में शून्य ही सिद्ध हो पाई हैं।

आज केवल इन्दिरा गांधी, कल्पना चावला, पी.टी. उषा, अरुंधती राय आदि चंद नामों को लेकर ही महिलाओं को प्रतिष्ठित या गौरवान्वित ठहराकर शेष नारी वर्ग को शोषित किए जाने की छूट नहीं दी जा सकती। अतः गैर सरकारी संगठन, सामुदायिक संगठन, समाज की सोच नारी शिक्षा का प्रसार, प्रसार अभिभावकों की पुत्र-पुत्री के प्रति समदृष्टि एवं सम सुविधा ही इस समस्या का जड़ से निराकरण संभव कर सकती है।

भारतीय संविधान ने नारी-पुरुष को एक-दूसरा पूरक माना है तथा समान अधिकार प्रदान किए हैं। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में क्रमशः सुधार लाए जा रहे हैं। शहरों की महिलाओं का कार्य क्षेत्र निरन्तर व्यापक एवं क्षमताशील बनता जा रहा है। अभी ग्रामीण स्तर पर निश्चय ही बहुत कुछ करना बाकी है। ग्रामीण प्रतिभा को निकालकर लाना और उस प्रतिभा को निखरने व संवरने का अवसर देना आज के संदर्भ में बहुत आवश्यक है। सुविधाओं के अभाव में कुछ एवं उचित मार्ग दर्शन के बिना ग्रामीण बालिकाओं का विकास संभव नहीं।

अतः मैं यही कहना चाहूंगा कि भारतीय नारी अपनी शक्ति और क्षमताओं को पहचान गई है। उसने अपने आपको प्रत्येक क्षेत्र में स्थापित करना आरंभ कर दिया है। अब वह अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष करने को भी प्रस्तुत है।

विजय श्री इसके हाथों में, कभी न इसकी हार है।
शक्ति की मूरत है नारी, शक्ति का अवतार है।

सम्पर्क: 15, स्टेशन मार्ग, महिंदपुर रोड,
जिला-उज्जैन (म.प्र.)
मो: 9893072718

□□

लेखकों से निवेदन

1. नए-पुराने सभी लेखकों का स्वागत है।
2. रचनाएं मौलिक, अप्रकाशित तथा अप्रसारित होनी आवश्यक हैं। फुलस्केप साइज के कागज पर एक ही तरफ साफ अक्षरों में लिखी हों। टाईप की हुई रचनाओं को प्राथमिकता दी जायेगी।
3. फोटो कॉपी न भेजें, अन्यथा रचना पर विचार नहीं किया जायेगा।
4. मौलिकता का प्रमाण-पत्र अवश्य संलग्न करें।
5. रचनाएं भेजते समय कृपया इस बात का ख्याल रखें कि वह स्तरीय हों तथा समाज, साहित्य एवं संस्कृति से जुड़ी हुई हों।
6. ऐतिहासिक रचनाओं का भी हम स्वागत करते हैं, परन्तु उसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता कि जिम्मेदारी पूरी तरह से लेखक की होगी।
7. किसी पर्व-त्योहार आदि पर विशेष लेख कृपया संबंधित तिथि से एक दो माह पूर्व भेजें, ताकि हम उस पर समय रहते विचार कर सकें।
8. अनूदित रचनाएं भेजते समय कृपया मूल लेखक की लिखित अनुमति अवश्य संलग्न करें; वरना उस पर विचार करना संभव न होगा।
9. किसी विशेषांक के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया लिफाफे के ऊपर विशेषांक का नाम अवश्य लिखें।
10. रचनाओं के साथ कृपया डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न न करें। अस्वीकृत रचनाएं वापस करने का कोई प्राविधान नहीं है।
11. रचनाएं ई-मेल पर संलग्नक के तौर पर भी भेज सकते हैं।
12. रचनाओं की स्वीकृति सम्बन्धी अनावश्यक पत्र-व्यवहार या दूरभाष पर बात न करें। स्वीकृत रचनाएं समय पर प्रकाशित की जाती हैं और उसकी एक प्रति लेखक को अवश्य भेजी जाती है।

रचनाएं निम्न पते पर भेजें :-

प्राची मासिक, 7, श्री होम्स, कंचन विहार,
बचपन स्कूल के पास, लामटी, विजय नगर,
जबलपुर-482002

Email :- prachimasik@gmail.com

अजनबी रिश्तों का पार्क: “एक सशक्त कथाकृति”

डॉ. रुखसाना सिद्दिकी

साहित्य सरोवर में संवेदनाओं के पुष्प, अनायास नहीं खिलते. इनके बीज धीरे-धीरे प्रस्फुटित हो जब अपने लिए अनुकूल वातावरण निर्मित कर, लेखनी का रूप धारण करते हैं तब एक कालजयी रचना की सुगंध समाज महसूस करता है. ऐसी ही सुवासित कृति “अजनबी रिश्तों का पार्क” मेरे हाथों में हैं. निरुपम जी (श्री अनुपम श्रीवास्तव, प्रधान न्यायाधीश) की अनेक कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं. पर इस कृति के अध्ययन का सौभाग्य पहली बार मिला. अनुपम जी के इस संग्रह में कुल 14 कहानियां विस्तृत फलक के साथ समाहित हैं. सभी कहानियों के पात्र आम जीवन से रू-ब-रू कराते, यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़े हुए हैं. कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है, पात्र पाठक से संवाद कर रहे हैं. सहजता सरलता इन कहानियों की प्रमुख विशेषता है. पूर्ण कसावट से बुना गया कथानक पाठक में जिज्ञासा बनाये रखता है. लेखक के गहन चिंतन की छाप हमें संग्रह की प्रथम कहानी “उधेड़बुन” में मिलती है. सरकारी बंगले में पूरा जीवन व्यतीत कर, बुढ़ापे में एक प्लैट की कल्पना कितनी कष्टदायी होती है. नौकरी पेशा परिवारों की पीड़ा उजागर करती है यह कहानी. तो वही “फिर वही जंगल” कहानी आज के नौकरीपेशा पति-पत्नी की मानसिकता रेखांकित करती है. बढ़ती महत्वाकांक्षाएं मानव को रोबोट बना रही हैं. कहानी की पात्र सवि के लिये “बच्चे ना कल की निमायत थे न आज की खुशी” वह ईंट गारे के मकान के लिये अपने कीमती जेवर बेचने में भी गुरेज नहीं करती.

“मैंने लोदन को नहीं मारा” जैसा कि नाम से ही विदित होता है. वर्तमान का सच यही है कि राजनीति की विसात पर कक्काजी जैसे चाणक्य नीति के पात्र ही सफल होते हैं. समाज की कटु सच्चाई को आईना दिखाती रोचक कथा है “दुखों का मुआवजा” कहानी के पात्र किशन की एक्सीडेंट में मौत, जवान बेटी के विवाह की चिंता, तब पत्नी जमुना द्वारा ससुर को सलाह- “इलाहाबाद बनारस जाने से अच्छा है कि अस्थियां बेतवा में सिरा दो.” क्लेम के लिये अनपढ़ जमुना और चिप्पू पर वकील का दबाव और कुछ राशि उन्हें देकर लाखों के क्लेम

के कागजात पर हस्ताक्षर करा लेना आज के सभ्य समाज की मानसिकता रेखांकित करता है. “स्वकाया से स्वकाया में” कहानी का शीर्षक साक्षणिक है और जिज्ञासा उत्पन्न करता है. इस कहानी का पात्र, दायित्वों से पलायन कर साधुनुमा वेश बना, यात्रियों की तरह स्टेशन पर दिन काटता है. वहां चिलम की दम भरते एक दो साधुओं से उसका परिचय होता है वह शांति की तलाश में आश्रम जाता है पर आश्रम का वातावरण वह आत्मसात नहीं कर पाता और रात के सन्नाटे में आश्रम छोड़ पुनः अपनी काया में अर्थात् पुराने परिवेश में लौट आता है.

स्त्री की आत्मनिर्भरता एवं स्वतंत्रता भी वैवाहिक संबंधों में मतभेद एवं अलगाव का कारण बन रहा है इसकी झलक हमें “सशर्त रिश्ते” में मिलती है तो वहीं “आसपास की खाली जगह” उस नारी की पीड़ा बयान करती है जो अपने जीवन की खाली जगह भरने का भरसक प्रयास करती है परन्तु असफल रहती है. कहानी की पात्र निशा पति की मौत के बाद दूसरा विवाह करती है. परिस्थितियां उसे तलाक के मोड़ पर खड़ा कर देती हैं, तब उसका दोस्त रोहित उसे आश्रय देने की कोशिश करता है परन्तु अंत में निशा दृढ़ संकल्प ले, उसे नकार देती है. यह नारी के आत्मबल पर आधारित कहानी है.

उत्तम पुरुष में लिखी शीर्षक रचना “अजनबी रिश्तों का पार्क” में जीवन की अनुभूतियों का सजीव चित्रण है. प्रातःकालीन भ्रमण में अपरिचितों से कभी संवाद, कभी बिना संवाद के अपनापन कायम हो जाना. इस अनुभूति का अनुपम जी ने बहुत धैर्य और कुशलता से चित्रण किया है.

सभी कहानियां के पात्र पाठक से सीधा तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं. कहानियां सरल होते हुए भी अर्थ में गूढ़ हैं और मानवमन को कचोटती हैं. कहीं-कहीं बुंदेली की छटा सरसता उत्पन्न करती हैं. नैतिक मूल्यों का पतन, पारिवारिक रिश्तों में खुरदरापन, बाह्य-चमक दमक में रिश्तों की खोखली बुनियाद स्त्री-पुरुष के वैवाहिक संबंधों में टकराव, महत्वाकांक्षाओं के बोझ तले नीरस होते जीवन के महत्वपूर्ण क्षण इन तमाम

बिन्दुओं को अनुपम जी ने बखूबी उकेरा हैं।

इसी तरह “अतीत को छूकर”, “एक सपना अनेक सपने”, “पुल की तलाश में”, “अतृप्त मोक्ष”, “अगले जन्म में”, “तुमने सच कहा पर” सभी कहानियाँ सौंदर्यपूर्ण हैं। ये वर्तमान समाज की नब्ज टटोलती, युवाओं की मानसिकता से आगाह करती, जीवन के कमजोर तानों-बानों पर प्रकाश डालती, अनुभूतियों का समस्त निचोड़ बिना लाग लपेट के सीधे सरल, सहज शब्दों में पाठकों से कहती हैं।

अनुपम जी के अन्य संग्रहों की भांति, इस कहानी संग्रह को भी पाठक खोज कर पढ़ेंगे। आपकी लेखनी सतत प्रवाहमान रहे इसी आशा के साथ।

समीक्ष्य कृति: अजनबी रिश्तों का पार्क (कहानी संग्रह)

लेखक: अनुपम श्रीवास्तव ‘निरुपम’

प्रकाशक: संजय पब्लिकेशन्स, जयपुर

पृष्ठ संख्या: 145

मूल्य: 190

सुबह होने वाली है : एक नजर

निर्मला सुरेंद्रन

साहित्य समाज में वह उपहार है जो जीवन के हर क्षेत्र में मार्ग दर्शक का काम करता है इसीलिये साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। साहित्यकार का यह कर्तव्य होता है कि वो अपनी रचना से पाठक वर्ग के अंदर मंगलमय जीवन जीने का बोध उत्पन्न कराये, श्री शिवकुमार दुबे की नवीनतम कृति “सुबह होने वाली है” अंधेरे दूर होने का आश्वासन देती व अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने का संदेश देती ऐसी कृति है, जिसकी रचना करते हुए कवि ने मानवीय भावनाओं के समस्त पहलुओं का स्पर्श किया है काव्य संग्रह की एक पंक्ति है- आकांक्षाओं के दीप प्रज्वलित कर/हृदय में/उमंग भर हृदयस्पर्शी चाहतों का मनपसंद/ख्वाब पाले जी रहा हूँ।

सामाजिक विसंगतियों से रू-ब-रू होते हुए उन्होंने “सौदागर” “रिश्वत” “चेहरे” व “धर्मान्तरण” जैसे काव्य की रचना की है। सौदागर में स्वार्थपरता से व्यथित हो वे कहते

हैं सारे संसार में फैले हुये हैं, सौदागर/सौदा करना जरूरी है/ हर एक सौदे के मसौदे/ पर जी रहा है सौदा और समझौता जीवन/ की नियति है।

कुल 99 कविताओं के इस संग्रह की खासियत यह है कि हर कविता एक नई अनुभूति से जुड़ी है हर छोटी बड़ी कविता अभिव्यक्ति की एक सरिता है जो इस संग्रह को सागर का रूप प्रदान करती है।

आज देश की राजनीति बिना किसी नीति के राजकाज चला रही है। आज आपाधापी का बाहुल्य है। चाहे दल के रूप में हो या संगठन के रूप में जनहित के अभाव में हताश जन साधारण की वेदना ‘गरीबी’ शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में झलकती हैं- लालसा/ इच्छाएँ एकता पाठ/ राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न/ होने के साथ होता है/ गरीबी मिटाने की इच्छा शक्ति का अभाव जिम्मेदार है/ कमजोर वर्ग को उत्पन्न करने के लिये

जन साधारण में जोश भरने व अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद करने को प्रेरित है। रचना ‘जागो जनता जागो’ जिसमें कवि आह्वान करते हैं- ‘प्रजातंत्र के हैं सच्चे रक्षक/ हम बता सकते हैं अपना अधिकार/ सत्ताओं में बैठे हमारे ही प्रतिनिधियों को/ उतार सकते हैं सड़कों पर/ जो भूल गये हैं मर्यादा लोकतंत्र की’

सुबह होने वाली है, कविता संग्रह अयन पब्लिकेशन, महारौली, नई दिल्ली द्वारा आकर्षक पेपरबैक में प्रकाशित की गई।

जीवन में हम जब किसी निराशा से घिरते हैं तब कवियों और लेखकों की बहुमूल्य पंक्तियाँ हमें निराशा के गर्क से निकलने की प्रेरणा देती हैं व आशा का दीप जलाकर हमें उबारने का प्रयास करती हैं। साहित्य के इस चमत्कार को नमन है। कवि की ये पंक्तियाँ अंधेरे दूर करने की प्रेरणा देती हैं, ‘अंधियारे अपना काम चुपचाप करने में माहिर हैं/ खोजनी होगी राह नई रोशनी की/ किरणें अधियारे के पार/ भेदकर जगमग सबको कर दे साथ ही, मिन्नते छोड़ दो में कवि लिखते हैं - ‘मिन्नतों में बीत गया समय/ मजबूरी की राह चला अब कोई नहीं/ उड़ने के लिये आसमान काफी है।

कवि शिवकुमार दुबे की रचनाएँ सरल व सौम्य भाषा में लिखी गई है जो जन साधारण के मन को सहजता से स्पर्श करते हैं। कोमल कल्पना को उड़ान देते हुये वे ‘तुम्हारे रूठने पर शीर्षक कविता की रचना करते हैं - तुम्हारे रूठने पर/ घर पर लगा/ नीम का पेड़ भी/ अपनी शाखाओं पर लगी/ पत्तियों को

हिलाकर/ तुम्हें सांत्वना देना चाहता है.

कुल मिलाकर काव्य संग्रह 'सुबह होने वाली है' एक पठनीय कृति है. किसी-किसी कविता की रचना में धैर्य का अभाव दिखता है. सप्रयास काव्य रचना की विविधता भले न हो पर कविताओं में लयबद्धता के लिये थोड़ा सा प्रयास करना आवश्यक होता है. काव्य संग्रह में कहीं-कहीं बेतरतीबी दिखी, कहीं-कहीं अनावश्यक पंक्तियाँ भी भावनाओं को पन्ने पर उतारते समय थोड़े से और प्रयास की उम्मीद कवि से की जा सकती है. अगर ऐसा हुआ तो सोने पर सुहागा होगा.

पुस्तक का मुख्यपृष्ठ उत्कृष्ट है. यह पुस्तक संग्रहणीय है एवं हर घर के पुस्तकालय का अंश बनने योग्य भी. कवि को भावी जीवन व पुस्तक के लिये असीम शुभकामनायें इन पंक्तियों के साथ.

शब्दों से व्यथा को दूर कर दो
रोशनी का पुंज स्नेह से जला दो,
कोई बाधा मार्ग में अवरोध न हो
एक दीपक विश्व के आंगन में लगा दो'

समीक्षक का पता: सी-1/202, त्रिमूर्ति अपार्टमेंट,
एन.ए.डी.टी. के पास, पोस्ट-मनकापुर,
नागपुर-440030 (महाराष्ट्र)

तीसरी आंख : किसकी

प्रो. (डॉ.) शरद नारायण खरे

उत्कृष्ट काव्य अभिव्यक्ति से परिपूर्ण युवा कवि कालीदास ताम्रकार मौलिक चिंतक व संवेदनशील शिल्पी हैं. वे भावनात्मक आवेग से आप्लादित एक ऐसे रचनाकार हैं, जो कि सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने में पूर्ण सजग व उत्साही दृष्टिगोचर होते हैं.

'तीसरी आंख' की कविताएं समय के समानांतर हैं, जिनमें एक आदर्श संदेश व दिव्य दृष्टि है तथा विसंगतियों से भरे समाज की विकृतियों पर सटीक प्रहार किये गये हैं. कविताओं में एक ऊर्जा व चेतना विद्यमान है. कविताओं की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वे पाठकों से संवाद करती हैं. यही कारण है जो कि हर कविता पाठक को बहुत कुछ सोचने को विवश कर देती है. विविध विषयक कविताएं, विविध वर्णी पुष्पों का एक आकर्षक गुलदस्ता है. कविताओं का शिल्प प्रभावशील है -

बड़ी-बड़ी कस्में, वादे सब करते हैं,

अपमान तिरंगे का, चाहे जब करते हैं।

वर्तमान की विदूषताओं, विकृतियों, विसंगतियों, विडंबनाओं पर जिस प्रकार से कवि ने प्रहार किया है वह न केवल श्लाघनीय है बल्कि अभिनंदनीय भी है. व्याप्त ढोंगों व पाखंडों पर जिस प्रकार से कवि ने प्रहार किया है वह उनकी तेजोस्वता का परिचायक है-

संतों के लिये जेलें, चोरों के जल्वे हैं

काले धन की खातिर, विदेश में खोली है.

136 पृष्ठीय इस कृति में कुल 104 कविताएं हैं जिनमें एक गहन चिंतन/एक विशिष्ट चेतना विद्यमान है. यह यथार्थ है कि वर्तमान में जिस प्रकार से संवेदना, मूल्यों, कर्तव्य परायणता व संस्कारों से विमुखता/पतन दृष्टिगोचर हो रहा है उसे सुनकर/जानकर हर व्यक्ति भावुक हो जाता है तो फिर कवि हृदय की तो बात ही निराली है. कालीदास जी लिखते हैं.

दाखूखोरी अमर हो रही, जो का हो रहो देखो तो,

हिन्दी पिछड़ रही है अपनी, चौराहे से देखो तो.

यह यथार्थ है कि कालीजी एक समर्थ कवि/रचनाकार सृजक हैं. उनकी दृष्टि भी समसामयिकता से परिपूर्ण है. उन्हें लिखने का भी गहन व व्यापक अनुभव है. यही कारण है जो कि उन्होंने कविता/गीत/गजल सभी विधाओं को प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय कार्य किया है. संवाद की शैली में सृजित कविताएं पाठक को प्रभावित करती हैं तो कविताओं की सम्प्रेषणीयता भी पाठक पर गहरा प्रभाव छोड़ती है. सधी हुई कलम से सार्थक चिंतन और मौलिक दृष्टिकोण लिये प्रस्तुत हुई कविताएं/गीत निःसंदेह उत्कृष्ट हैं-

राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत में, फर्क न मालूम नेता को,

राष्ट्रगीत बिन ध्वज फहराते, नेता मंत्री देखो तो.

इंसाफ के मंदिर में, श्रीराम की बोली है

मेरे भारत की नैया, नेताओं से डोली है.

कवि का मन संस्कारों, भारतीयता, मानवीय मूल्यों, प्रेम, अपनत्व, प्रीति, सहिष्णुता से परिपूर्ण है, इसलिये उनके द्वारा सृजित श्रंगारिक गीत भी सुखद-सुहाने लगते हैं-

गुजरी यादों के, दिल पे मेले लगे,

तेरे बिन सारा जहां, आज मुझे सूना लगे.

हमसे रहा न जाये, तुमसे कहा न जाये,

महबूब मेरे आजा, अब तो रहा न जाये...

इसमें किंचित भी संदेह नहीं कि 'तीसरी आंख' में जीवन

के विविध रंग-रूप हैं, जिनमें जीवन की गहन अनुभूतियां हैं। समाज और मानव को व्यापकता के साथ सर्वोक्षित करने की काली जी की चेष्टा काव्य-सृजन के साथ जिस प्रकार से फलीभूत हुई है वह अभिनंदनीय है। कवि की भावुकता ने कविताओं में जिस प्रकार से संवेदना का परिचय दिया है वह कवि की उत्कृष्ट सृजनशीलता का प्रतीक ही माना जावेगा। राष्ट्रीयता से अनुप्रमाणित भावनाएं भी सुखद अनुभूति देती हैं।

भारतवर्ष हमारा है, हमें जान से प्यारा है,

मानव में हो भाई चारा, ये संदेश हमारा है।

आंख लगी है जहां विश्व की, वो कश्मीर हमारा है,

हम भारत के वीर सिपाही, भारत वर्ष हमारा है..

युवा कवि कालीदास ताम्रकार 'काली' का साहित्य-सृजन समय अर्थों में सराहनीय है। वे सार्थक सृजन के लिये बधाई व साधुवाद के पात्र हैं। सादा पर आकर्षक मुखपृष्ठ व उत्तम छपाई के कारण कृति की महत्ता द्विगुणित हो जाती है। निष्कर्षतः कृति पठनीय है।

समीक्षक का पता: विभागाध्यक्ष (इतिहास),

शासकीय महिला महाविद्यालय,

मंडला-431661 (म.प्र.)

मो: 9425484382

समीक्ष्य कृति: तीसरी आंख (काव्य संग्रह)

कवि: कालीदास ताम्रकार

प्रकाशक: पाथेय प्रकाशन, जबलपुर (म.प्र.)

मूल्य: 250

चटपटी है, चापलूसी की चाट

आचार्य भगवत दुबे

प्रख्यात साहित्यकार श्री सनातन कुमार वाजपेयी 'सनातन' का लेखन बहुआयामी एवं विविधवर्णी है। कविता, कहानी, निबंध, समीक्षा, अनुवाद, गीत, गजल, दोहा, हाइकु एवं जनक छन्द जैसी अनेक कृतियों के प्रकाशन के बाद सनातन जी ने व्यंग्य विधा पर अपनी सशक्त एवं धारदार कलम चलायी है। विगत वर्ष आपका व्यंग्य संग्रह 'झूठ की चटनी' प्रकाशित हुआ था

जिसकी साहित्य जगत में अच्छी खासी चर्चा हो रही है, और अब फिर एक व्यंग्य संग्रह 'चापलूसी की चाट' पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

यूं तो प्रारंभ में व्यंग्य को साहित्य की विधा के रूप में स्वीकार करने में विद्वान आलोचक आनाकानी करते रहे हैं, किन्तु श्री हरिशंकर परसाई, शरद जोशी एवं लतीफ घोषी जैसे प्रखर प्रतापी व्यंग्यकारों की दमदार रचनाओं ने हिन्दी साहित्य में समालोचकों से अपना लोहा मनवा लिया है।

कविवर सनातन जी की प्रकाशित कृतियों में, साकेत के स्वर, सुबोध गीता, माटी की गंध, चीखती लपटें, राष्ट्रवीणा, मानस चिन्तामणि, आत्मदीप, सूरज की तलाश, जनक छन्द के गांव में, भक्ति मंजरी, सांस-सांस जा रही, दोहा मंजरी एवं झूठ की चटनी सहित यह समीक्षा कृति चौदहवीं है। अभी भी सनातन जी की एक कृति प्रकाशनाधीन है।

प्रस्तुत कृति, 'चापलूसी की चाट' में विभिन्न विषयों पर छब्बीस पेने, रसीने, चुटीले एवं धारदार व्यंग्य आलेख सम्मिलित हैं, कृतिपय आलेखों के शीर्षक तो अपने नाम से ही चटपटेपन को संकेत देते हैं यथा 'चापलूसी की चाट', 'परनिन्दा को शर्बत', 'भ्रष्टाचार की खेती', 'तिकड़म की जादूगरी', 'प्रशंसा का हलवा', 'चरित्र की चासनी' एवं 'छपास की भूख' आदि। 'नैतिकता की अर्थी' नामक आलेख में वाजपेयी जी लिखते हैं, यह कलियुग चुस्ती-चालाकी का युग है। लूट-खसोट, भ्रष्टाचार-धूस, दलाली, डकैती, बलात्कार, इस युग के महान धर्म हैं।

'ससुरी हिन्दी' नामक लेख में ब्याज के माध्यम से अंग्रेज सत्ता पर कटाक्ष किये गये हैं। हिन्दी तो हिन्दी है और अंग्रेजी, श्रेष्ठ और संपन्न भाषा है। हमारी गुलामी को प्रमाणित करने वाली एवं हमारे गर्व को बढ़ाने वाली भाषा है। तब हम इसके दामन का परित्याग भला कैसे करें?

प्रस्तुत कृति के नामधेय व्यंग्य 'चापलूसी की चाट' के संबंध में, व्यंग्यकार सनातन जी के रोचक विचार देखिये।

"सभी चाटों से अत्यधिक स्वादिष्ट होती हैं, 'चापलूसी की चाट' यह चाट अनादि काल से इस जगत में अपना अस्तित्व बनाये हुये है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस चाट को खाने और खिलाने में किसी भी प्रकार का धन व्यय नहीं करना पड़ता। यह सर्वत्र निःशुल्क उपलब्ध रहती है।"

'निन्दा का शर्बत' नामक व्यंग्य आलेख का यह तर्क भी ध्यातव्य है। कबीर ने तो, इस निन्दा के शर्बत को पिलवाने वालों को अत्यन्त महिमा प्रदान की है, उनको परम हितैषी बताया है, अपने आंगन में ही उनकी कुटिया बनवाकर रखने

को परामर्श दे डाला है, उनका कथन है कि—

“निंदक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय”

‘भ्रष्टाचार की खेती’ नामक आलेख का यह चुटीला यथार्थ भी देखिये—

“सबसे पहले तो लाज शर्म के दामन का परित्याग करें. यदि पैसा लेने में, आप शर्म खायेंगे तो यह खेती नहीं कर पायेंगे. हां तो लाज शर्म को पूरी तरह त्याग दें और जुट जायें अपनी इस खेती के काम में. यह खेती जिसमें हरर लगे न फिटकरी और रंग चोखा.” हर प्रकार से लाभदायक है. प्रशंसा का हलवा नामक आलेख में बाजपेयी जी महाभारत के मिथकीय प्रसंगों के माध्यम से, प्रशंसा के हलवा की महत्ता प्रतिपादित करते हैं. “महाभारत का एक महान पात्र था” “दुर्योधन” उसके शकुनि नाम के एक मामा थे जो इस हलुवे को तैयार करने की कला में निपुण थे. इसी हलुवे का गुण था कि दुर्योधन अपने आप को, संसार के वीरों में शिरोमणि मानता था. यहां तक कि भगवान श्री कृष्ण भी उसकी दृष्टि में, मात्र एक ग्वाले से अधिक कुछ भी नहीं थे.

इसी तरह रावण को भी इस हलुवे ने इतना ताकतवर बना दिया था कि उसने अपनी भुजाओं के बल पर कैलाश पर्वतों को ही उठा लिया. उसके दरबार के सभी मंत्रीगण इस हलुवे को तैयार करने की कला में अत्यंत निपुण थे. व्यंग्य पहले तो मनोरंजक लगता है किन्तु बाद में तिलमिला देता है. पाठक पहले तो हंसने पर मजबूर हो जाता है परन्तु जब व्यंग्य का अर्थ समझ में आता है, तिलमिलाकर शर्मिन्दगी का अनुभव करता है.

धर्म एवं अध्यात्म चिन्तन में सदैव डूबे रहने के कारण, बाजपेयी जी व्यंग्य लिखते-लिखते उपदेशक की मुद्रा में आ जाते हैं. उनके व्यंग्यकार के ऊपर उनका शिक्षक हावी हो जाता है. ‘धूल की आत्मकथा’ नामक लेखक का उपदेश प्रधान गद्य देखिये.

“याद रखो दुनिया में कोई कितना भी वैभवशाली बलवान क्यों न बन जाये किन्तु काल की चपेट से कोई नहीं बच पाता. भले ही जब तक सांस चल रही है तब तक ऐंट अकड़ लो. अपने बड़प्पन का प्रदर्शन कर लो. सबको धूल में मिलाने की हुंकार भरते रहो एवं एकदम काले नाग से भी अधिक विषैले बन जाओ. सब कुछ मिटा देने की डींग हांकते रहो. पर सत्य को कभी मत भूलो.”

सामाजिक विसंगतियों एवं विरूपताओं को इस व्यंग्य रूपी औषधि के द्वारा कुविचारों की व्याधियों को मिटाकर समाज में

कविता

इतिहास के पन्नों पर राजीव कुमार ‘त्रिगर्ती’

वक्त से तुम्हारी उम्मीदें जितनी ज्यादा होंगी
उतना ही छले जाओगे तुम पल-पल
इसलिए उम्मीदों का दामन समेटकर
वर्तमान के कंधों पर चढ़कर
मचाते रहो उछल-कूद
किसी दिन छू लोगे तारों को
तोड़ लाओगे चांद
कर लोगे सूरज के रथ पर सवारी
मुंह में अंगुलियां दबाएंगे सातों महाद्वीप
दसों दिशाएं चर्चा करेंगी तुम्हारी
उकेर लेगा इतिहास तुम्हें अपने पन्नों पर
वक्त को जीतने का और कोई तरीका नहीं.

सम्पर्क: गांव-लंगू, डाकघर-गांधीग्राम वाया-बैजनाथ,
जिला-कांगड़ा (हि.प्र.)-176125
मो: 9418193024

वैचारिक एवं चारित्रिक सुचिता लाने के लिए कविवर श्री सनातन कुमार बाजपेयी ‘सनातन’ का यह सारस्वत प्रयास प्रशंसनीय है. आशा है, आपकी अन्य कृतियों की भांति यह कृति भी साहित्यजगत में सुचर्चित होगी.

मैं, आदरणीय ‘सनातन’ जी के स्वस्थ सृजनशील दीर्घायुष्य की कामना करते हुए उन्हें, इस श्रेयस्कर सृजन के हलए बधाई देता हूं.

समीक्ष्य कृति:	चापलूसी की चाट (व्यंग्य संग्रह)
व्यंग्यकार:	सनातन कुमार बाजपेयी ‘सनातन’
प्रकाशक:	पाथेय प्रकाशन, सराफा, जबलपुर
मूल्य:	100

समीक्षक का पता: महामंत्री कादम्बरी,
पिसनहारी मढ़िया के पास, जबलपुर-482003
मो: 09300613975

□□

‘राष्ट्रभाषा हिन्दी : शिक्षा और संस्कृति’ पर समीक्षा गोष्ठी



उज्जैन: राष्ट्रभाषा हिन्दी विश्व में भारत की प्रतिष्ठा की प्रतीक है. शताब्दियों से भारतीय मूल्यों के प्रसार में हिन्दी भारतवंशियों को महत्त्वपूर्ण आधार देती आ रही है. वर्तमान दौर में हिन्दी को लेकर व्यापक चेतना की आवश्यकता है. हिन्दी विश्व भाषा के रूप में प्रगति के नए सोपान तय कर रही है. हिन्दी भूमण्डलीकरण की संवाहिका और हमराह है.

ये उद्गार विक्रम विश्वविद्यालय के कुलानुशासक प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा ने राष्ट्रीय शिक्षक संघटना मंच द्वारा आयोजित समीक्षा गोष्ठी में व्यक्त किए. यह समीक्षा डॉ. प्रभुलाल चौधरी के संपादन में प्रकाशित पुस्तक ‘राष्ट्रभाषा : शिक्षा और संस्कृति’ पर केन्द्रित थी.

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि साहित्यकार दविन्दरकोर होरा, सम्पादक काव्यकुंज, इंदौर, विशेष अतिथि श्रीमती रानी नारंग गजलकार इंदौर थीं.

कार्यक्रम में डॉ. नेत्रा रावलकर, डॉ. ज्योति मैवाल एवं श्रीमती शीला कुशवाह ने अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर अपने उद्गार व्यक्त किए. समीक्षा पाठ डॉ. अर्चना मेहरा, माधुरी जोशी एवं डॉ. पराक्रम सिंह ने किया. प्रारंभ में स्वागत डॉ. नेत्रा रावलकर ने किया. संचालन डॉ. पराक्रम सिंह ने किया एवं आभार प्रदर्शन डॉ. प्रभुलाल चौधरी ने किया.

प्रस्तुति: डॉ. प्रभुलाल चौधरी, उज्जैन

काव्य गोष्ठी का आयोजन

मीरजापुर: चित्रप्रस्थ साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विचार मंच के तत्वाधान में स्थानीय जे.पी. पुरम् कालोनी में काव्य गोष्ठी का

आयोजन किया गया.

अध्यक्षता प्रो. प्रभु नारायण श्रीवास्तव व संचालन सुरेश चंद्र वर्मा विनीत ने किया. कविगोष्ठी का आरम्भ श्याम अचल की वाणी वंदना से हुआ.

काव्य पाठ करते हुए गीतकार प्रमोद कुमार सुमन ने...

‘प्रेम की राह में, प्रीत की चाह में,
यदि कदम पर कदम मैं बढ़ाता नहीं,
उम्र की उस खड़ी दोपहर में कभी,
दर्द की झील में नहाता नहीं’ पढ़ा.

मुख्य अतिथि ब्रजदेव पांडेय ने कहा—उम्र के किसी पड़ाव पर पहुंचना युवक होना नहीं है, युवक होना है आग से खेलना.” केदारनाथ सविता ने पढ़ा—“खो गये हम स्मृति की बंद गलियों में, रोशनी है, बंद वक्त की मुट्ठियों में.”

गणेश गम्भीर ने सुनाया—“नफरतों से भरे आज के दौर में बस मुहब्बत, मुहब्बत, मुहब्बत लिखो.” भवेशचंद्र जायसवाल ने वैचारिक कविता पढ़ी—“बूढ़ी आंखों के उस पार एक कहानी है सूखी हुई नदी की,” मुहिब मिर्जापुरी ने “आईना दिल का अगर प्यार में टूटा होगा, सारे टुकड़ों में फिर एक ही चेहरा होगा” सुनाया. ताबिश इकरामी ने सुनाया—

“ताबिश चलेगी सुर्ख आंधी तो देखना,
आलम घनाहियों का असर टूट जाएगा”

सुरेश चंद्र वर्मा विनीत ने सुनाया—“अल्हड़ता अनुभव में खो गई, सागर में सरिता चुप होकर सो गई”.

भोलानाथ कुशवाहा ने सुनाया—“आपकी मुहब्बत का एहसान है मुझपर, वर्ना मैं बुत न होता, इबादत भी न होती”.

इसके अतिरिक्त लल्लू तिवारी, लालव्रत सिंह सुगम, सलिल पांडेय, आसी मछलीशहर, अताउल्लाह सिद्दीकी, और शुभम् श्रीवास्तव ओम आदि ने काव्य पाठ किया.

कवि गोष्ठी के अंत में संरक्षक प्रमोद कुमार सुमन एवं संयोजक भोला नाथ कुशवाहा ने संस्था की ओर से समस्त कवियों एवं शायरों को सदस्यता सम्मान पत्र देकर सम्मानित किया. धन्यवाद ज्ञापन सलिल पांडेय ने किया.

प्रस्तुति: केदारनाथ ‘सविता’, मीरजापुर

राष्ट्रीय संगोष्ठी

लखनपुर: सरगुजा विश्वविद्यालय के अधीन संचालित इंजीनियरिंग कॉलेज लखनपुर में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

30-31 मार्च 2015 को छत्तीसगढ़ विज्ञान एवं प्रायोगिकी परिषद् रायपुर द्वारा क्लीन, इफीसिएंट एक एफोर्डेबल फ्यूजन थ्रू सस्टेनेबल एनर्जी विषय पर किया गया। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में डॉ. बी.एल. शर्मा, कुलपति सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर चेयर पर्सन, डॉ.एन.डी.आर. चन्द्रा, कुलपति बस्तर विश्वविद्यालय, जगदलपुर मुख्य अतिथि, श्री आर.एस. भाकुनी, मुख्य कार्यपालन अभियंता अतिथि के रूप में एवं डॉ.ए.आर.पाटील, प्राचार्य एआई.टी.एम. राजनांदगांव वक्ता के रूप में उपस्थित थे।

कार्यक्रम का शुभारंभ सुबह 11 बजे से दीप प्रज्वलित करके किया गया। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी की अध्यक्षता सरगुजा विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ.बी.एल.शर्मा ने की। उन्होंने सौर ऊर्जा एवं वायुऊर्जा के बारे में बताया। उन्होंने अक्षय ऊर्जा के बारे में अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने क्रेडा की प्रशंसा करते हुए कहा कि क्रेडा के माध्यम से समाज को एक नई दिशा मिली है। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय का उदाहरण देते हुए कहा कि सौर ऊर्जा का उपयोग सभी प्रकार के संस्थानों में किया जाना चाहिए।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. एन.डी.आर. चन्द्रा ने कहा कि हम सब इसी ब्रह्मांड में रहते हैं और हमें इसकी सुरक्षा करनी चाहिए। उन्होंने पारिस्थितिकी तंत्र और वातावरण के संदर्भ में भी अपने विचार व्यक्त किए। विशेष अतिथि श्री ए.आर.एस. भाकुनी ने सौर ऊर्जा के बारे में बताते हुए सरगुजा संभाग में चल रहे क्रेडा के प्रयास से ऊर्जा का उत्पादन दूरस्थ क्षेत्रों में किया जा रहा है। संस्था के प्राचार्य डॉ. आर.एन.खरे ने राष्ट्रीय संगोष्ठी के रूप रेखा का विवरण देते हुए बताया कि यह सतत ऊर्जा हमारे निजी जीवन के लिए अति आवश्यक है। इसके उपयोग करने से पर्यावरण संरक्षण तथा भविष्य सुरक्षित होगा। कार्यक्रम के दौरान सभी अतिथियों द्वारा इंजीनियर कॉलेज परिसर में पर्यावरण रक्षा हेतु वृक्षारोपण किया गया जिसको सभी लोगों ने सुरक्षित देखभाल करने का निर्णय लिया।

राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी के दूसरे दिन में सर्वप्रथम डॉ. एच. एल. विश्वकर्मा सह प्राध्यापक भौतिक विभाग ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि विश्व दो चीजों से मिलकर बना है, पहला धातु और दूसरा ऊर्जा। उन्होंने सौर ऊर्जा के बारे में विस्तृत जानकारी दी। डॉ. एम.एल.नायक, कन्सलटेन्ट, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, मुख्य अतिथि ने जैव विविधता, जीवों के प्रकार एवं पौधों के प्रकारों के बारे में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला।

संस्था के प्राचार्य डॉ. आर.एन.खरे ने ऊर्जा के विभिन्न प्रकारों एवं उनके अनुप्रयोगों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला एवं

उन्होंने हैलथ, हार्डकजन एवं योगा को ऊर्जा से कोरेलेट कर बताया। अंत में उन्होंने अन.पी.टी.ई.एल. पर ग्लोबल वार्मिंग का विडियो दिखाया। कार्यक्रम के समन्वयक डॉ.एच. चन्द्रा सह प्राध्यापक मेकेनिकल विभाग ने सतत ऊर्जा, थर्मल पावर प्रोडक्शन, सौर ऊर्जा, वायुऊर्जा, बायोमास एवं हाइड्रो पावर प्लांट के बारे में विस्तृत रूप से व्याख्यान दिए। राजमोहिनी महाविद्यालय से आए डॉ. राहुल आर्या ने बायोगैस उत्पादन, बायोगैस प्लांट के बारे में विस्तृत रूप से अपने विचार व्यक्त किए।

संगोष्ठी में छात्र-छात्राओं ने भी अपने रिसर्च पेपर प्रस्तुत किए जिनमें से फाल्गुनी चौबे, सरिता, रितेश, मनीष, लालमोहन, अमर बहादुर, अंकित, निखिल, विरेन्द्र, कृष्णा, दुर्गेश, युगल हैं। छात्र-छात्राओं ने अपने किए रिसर्च में बताया कि यह सतत ऊर्जा हमारे भविष्य व पर्यावरण को किसी भी प्रकार से नुकसान नहीं पहुंचाती हैं। हमें इस ऊर्जा का उपयोग दैनिक जीवन में मानव कल्याण हेतु करना चाहिए। छात्र-छात्राओं ने विभिन्न प्रकार के ऊर्जा एवं उनके उपयोग के बारे में भी बताया। छात्र-छात्राओं ने इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में बढ़-चढ़कर भाग लिया।

राष्ट्रीय संगोष्ठी को दो चैप्टर में विभाजित किया गया था पहला चैप्टर फैकल्टी सेशन व दूसरा स्टूडेंट सेशन। अंत में सभी प्रतिभागियों को सर्टिफिकेट का वितरण डॉ. एम.एल.नायक, डॉ. आर.एन.खरे एवं डॉ.एच.चन्द्रा द्वारा किया गया।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में मेकेनिकल विभाग के सहायक प्राध्यापक डॉ. एस.सी. गजभिये, निर्विकार गौतम, पीयूश राय, पंकज सिदार, अमित एक्का, पूनम दीवान, मतलेश रात्रे समाज सेवी संस्था छत्तीसगढ़ शबरी सेवा संस्थान के प्रदेश सचिव सुरेन्द्र साहू एवं महीधर दुबे का विशेष योगदान रहा। अंत में धन्यवाद ज्ञापन डॉ. एच.एल. विश्वकर्मा ने दिया, एवं मंच का संचालन सुश्री पूनम दीवान ने किया। इस अवसर पर सरगुजा विश्वविद्यालय के कुलसचिव श्री आर.के. चौहान ने अपनी शुभ कामनायें दी।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी के कोआर्डिनेटर डॉ.एच. चन्द्रा थे। इस संगोष्ठी में देश-विदेश से आए लगभग 30 से ज्यादा रिसर्च पेपर प्रस्तुत किये गए। इस दौरान संस्था के सभी अधिकारी, कर्मचारी एवं छात्र-छात्राएं उपस्थित थे। इसकी जानकारी संस्था के प्राचार्य डॉ. आर.एन. खरे ने की।

□□

प्रज्ञा प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

काव्य

1. हवाओं के शहर में (गजल संग्रह)	:	राकेश भ्रमर	₹100
2. जंगल बबूलों के (गजल संग्रह)	:	राकेश भ्रमर	₹100
3. रेत का दरिया (गजल संग्रह)	:	राकेश भ्रमर	₹100
4. सबरंग-हरसंग (गीत संग्रह)	:	अंशलाल पन्ने	₹600
5. दोहा-मंजरी (दोहा संग्रह)	:	सनातन कुमार वाजपेयी	₹150
6. तरन्तुम (गजल संग्रह)	:	मोहन लोधिया	₹150
7. सबमें सबका अंश (गीत संग्रह)	:	अंशलाल पन्ने	₹500
8. संवेदनाओं के स्वर (कविता संग्रह)	:	मनोज शुक्ल 'मनोज'	₹150
9. कुछ मन की (कविता संग्रह)	:	डॉ. आशा रानी	₹100
10. प्राची की ओर (गजल संग्रह)	:	सं. राकेश भ्रमर	₹100
11. अम्मा क्यों रोई	:	राकेश भ्रमर	₹400 (सजिल्द) ₹200 (पेपरबैक)
12. शबनवी धूप (गजल संग्रह)	:	राकेश भ्रमर	₹400 (सजिल्द) ₹200 (पेपरबैक)

उपन्यास

1. उस गली में	:	राकेश भ्रमर	₹ 60
2. डाल के पंछी	:	राकेश भ्रमर	₹100
3. ओस में भीगी लड़की	:	राकेश भ्रमर	₹300 (सजिल्द) ₹150 (पेपरबैक)
4. बहू बेटा	:	डॉ. मोह. मुइनुद्दीन 'अतहर'	₹100

कहानी संग्रह

1. अब और नहीं	:	राकेश भ्रमर	₹ 50
2. सांप तथा अन्य कहानियां	:	राकेश भ्रमर	₹200
3. प्रश्न अभी शेष है	:	राकेश भ्रमर	₹100
4. आग बुझने तक (अयन प्रकाशन)	:	राकेश भ्रमर	₹400
5. जामुन का पेड़ (लघुकथा संग्रह)	:	डॉ. गीता गीत	₹150
6. झूठ की चटनी (व्यंग्य संग्रह)	:	सनातन कुमार वाजपेयी	₹100
7. कुंवर प्रेमिल की इकसठ लघुकथाएं	:	डॉ. कुंवर प्रेमिल	₹100
8. मरी हुई मछली	:	राकेश भ्रमर	₹100
9. सइयां गाड़ीवान	:	ब्रह्मादीन 'बन्धु'	₹100
10. ये तो कहना ही था	:	डॉ. आशा रानी	₹100
11. किस्सा कहानी और बाल कविताएं	:	डॉ. कुंवर प्रेमिल	₹100
12. उसके आंसू (लघुकथा संग्रह)	:	राकेश भ्रमर	₹200

अन्य

1. समकालीन हिन्दी कविता में सामान्यजन	:	डॉ. शोभा सिन्हा	₹300
---------------------------------------	---	-----------------	------